समर्पण

प्रेय-प्रेम-पय प्याय नित, जननि झुलाई गोद।
मम 'बाबू जी' बनि दयो, नित नव मोद विनोद॥
घहरि छहरि घन काव्य-रस, सिच्यो रसिक जन-छेम।
नमि 'बाछा' तव नेह को, अरपत काव्य सनेम॥

काव्यावलोकन

किसी भी देश और समाज की वास्तविक स्थिति वस्तुतः उसके साहित्य-रूपी दर्पण पर प्रतिबिंबित होती हुई देखी जा सकती है। साथ ही विविध प्रकार की परिस्थितियों की भी परछाइयाँ उस पर अवलोकित की जा सकती हैं। स्थिति के अन्तर्गत बौद्धिक, मानसिक, चारित्रिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक दशायें आ जाती हैं, इन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाली भावानुभूतियाँ, विविध स्पृहायें, रागात्मिका वृत्तियाँ आदि भी साहित्य-मुकुर पर आभासित होती हैं। इन्हीं की झाँकी को देखकर देश और समाज का उत्कर्षापकर्ष भी देखा जा सकता है, उसकी संस्कृति और सभ्यता का मूल्य और महत्त्व परखा जा सकता है। साहित्य-सिन्धु का सुधासार यदि कहीं पूर्णतया प्राप्त होता है, तो केवल उसके सत्काव्य में, अतएव कहना चाहिए कि काव्य ही वह दिव्य दर्पण है जिसमें देश-समाज की सुन्दर संस्कृति, सभ्यता और उन्नत्यवनति की प्रतिछाया यथार्थतया आभासित होकर उसके सच्चे स्वरूप का यथेष्ट अनुमान कराने में क्षम होता है। न केवल देश और समाज का ही हृदय और मन अथवा ज्ञान-विवेक काव्य में निहित रहता है वरन् एक व्यक्ति की भी बोधवृत्ति, इच्छावृत्ति तथा भावनावृत्ति के साथ कल्पना-कुशलता भी काव्य में परिलक्षित होती है। यदि काव्य पर इनका यथेष्ट प्रतिबिम्ब न आ सके तो, वह वास्तव में सच्चा सत्काव्य कहा नहीं जा सकता, क्योंकि बिना इस प्रतिबिम्ब के काव्य की उपयुक्त उपादेयता ही नहीं रह जाती और उसका सम्बन्ध उस हित से नहीं रह पाता जिसके ही कारण वह उस साहित्य का मुख्यांग कहा जाता है, जो हित शब्द के आगे से उपसर्ग लगाकर फिर भावार्थ में साहित्य के रूप में आता है। यदि प्राचीन काव्य को इस विचार के साथ देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि प्राचीन काल में कविजन काव्य-रचना में रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दों के द्वारा आनंदोत्पादन के साथ ही देश-काल-सम्बन्धी सभ्यता, संस्कृति नीति-रीति के चित्रित अथवा व्यंजित करने की ओर पूरा ध्यान दिया करते थे। इसी लिए प्राचीन काव्य के मार्मिक अध्ययन से तत्कालीन देश-समाज की समस्त प्रमुखावस्थाओं का यथेष्ट परिचय प्राप्त हो सकता है। और धार्मिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, नैतिक और भावनात्मक दशाओं का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। प्राचीन काव्य से

हमारा तात्पर्य न केवल संस्कृत भाषा के काव्य से ही है वरन् व्रज भाषा और अवधी भाषा तक के उस काव्य से भी है जिसकी रचना लगभग १६वीं शताब्दी तक हुई है।

इधर की ओर आकर इस नवीन शताब्दी के इस पूर्वार्ध के प्रारम्भिक काल तक ऐसे काव्य की परम्परा न्यूनाधिक रूप से चलती रही, किन्तु लगभग १९२५ ई० से इधर की ओर जो काव्य-साहित्य सृजन हुआ और हो रहा है, विशेषतया खड़ी बोली में, उसमें देश-समाज की संस्कृति, सभ्यतादि की कोई भी विशेष उपयुक्त छाया नहीं दीखती। यह ठीक है कि उस पर पाश्चात्य नवीनतम प्रभाव अवश्यमेव स्पष्टतया दिखलाई पड़ता है। इधर की ओर मौलिकता और नवीनता के पीछे, बहुत अधिक भागने के कारण कवियों ने नये नये विषय तो अपने काव्यों में ला उपस्थित किये किन्तु उन विषयों पर अपनी नैतिक संस्कृति सभ्यता आदि का कोई भी प्रतिबिम्ब नहीं पड़ने दिया, वरन् नव्यता के लिए पाश्चात्य, रीति नीति संस्कृति-सभ्यतादि से सम्बन्ध रखने-वाले भावानुभवों का ही विशेष रूप से समावेश करने का प्रयास किया। इसका परिणाम इस रूप में ठीक हुआ कि देश और समाज को नूतन विचारा-धारा कुछ प्राप्त हुई, किन्तु इस रूप में अवश्यमेव समुपयुक्त फल नहीं हुआ कि उससे अपनी यथार्थ संस्कृत्यादि की छाया सर्वथा लुप्त सी ही हो चली। अब से लगभग ५० वर्षों के उपरान्त आज के काव्य से भारतीय हिन्दू-सभ्यतादि का कोई भी परिचय न प्राप्त हो सकेगा साथ ही प्राचीन हिंदू जाति के संस्कृति-सूचक ऐतिहासिक, पौराणिक चरित्रों का भी कदाचित् पूरा विस्मरण हो जायेगा और उनका कोई भी परिचय प्राप्त न हो सकेगा। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि इस काल में कोई भी काव्य ऐसा लिखा ही नहीं गया जो इस कथन का अन्यथा रूप होकर अपवाद स्वरूप हो। इस काल में भी कतिपय प्रशस्त कविवरों ने प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण करते हुए सुन्दर सत्काव्य लिखे हैं जिन पर भारतीय प्राचीन सभ्यतादि सूचक पवित्र चारुचरित्रों के सुन्दर चित्र चित्रित हुए हैं।

प्रसन्नता का विषय है कि प्रस्तुत काव्य ऐसे ही काव्यों में से एक ऐसा सत्काव्य है जिसमें एक पौराणिक कथानक के आधार पर प्राचीन समाज का ऐसा चारुचित्र चित्रित किया गया है कि पाठक या श्रोता उससे देश का प्राचीन रूप बहुत कुछ देख सकता है। काव्य के दो मुख्य भेद वस्तु वर्णन के

आधार पर यों रखे गये हैं, कि एक में तो किसी कथा को चित्रित किया जाता है और दूसरे में किसी हृदय और प्रकृति को। इस प्रकार एक में तो समाज और देश-काल का प्रतिबिम्ब रहता है और दूसरे में एक वैयक्तिक हृदय की मार्मिकानुभूतियों का आभास मिलता है। प्रथम को तो प्रबंध-काव्य और दूसरे को मुक्तक काव्य कहते हैं। यह भी ठीक है कि एक दृष्टि से दोनों प्रकार के काव्यों में देश-समाज और काल का प्रभाव-भाव किसी न किसी रूप में न्यूनाधिक रगों से रंजित रहता ही है, किन्तु फिर भी यह कह सकते हैं कि प्रबंध काव्य में वह प्रभाव बहुत कुछ स्पष्ट और सुबोध-सा रहता है, किन्तु दूसरे में ही कुछ यत्न-साध्य, सूक्ष्मालोचक दृष्टि प्राप्त और व्यंजित रूप में रहता है। आचार्यों ने इसी लिए प्रबन्ध-काव्य में एक पूरी कथा के रखने का विधान किया था, जिससे उसके द्वारा देश-काल का एक स्पष्ट और सुव्यक्त चित्र दृष्टि के समक्ष उपस्थित हो सके। इसी के साथ यह भी नियम रखा था कि प्रबंध-काव्य की कथावस्तु पौराणिक और ऐतिहासिक ही प्रधानतया रहे, यदि काल्पनिक भी रहे तो भी उसे ऐसा रूप दिया जाये कि उससे उक्त उद्देश्य की पूर्ति भली भाँति हो सके। संस्कृत के प्रायः सभी प्रमुख प्रबंध-काव्य या महाकाव्य इसके उत्तम उदाहरण हैं। ऐसे प्रबंध-काव्यों से रचयिता के विस्तृत समाजानुभव, देशोन्नति हास ज्ञान और सांस्कृतिक प्रचुर परिचय की परीक्षा हो जाती है। यह भी कहना यहाँ समीचीन है कि प्रबंध-काव्य के इस वर्ण्यवस्तु-नियम का यही तात्पर्य नहीं कि कवि अपने को केवल किसी निश्चित समय-समाज की एक संकीर्ण सीमा के ही अन्दर न रक्खे, उसे इसके साथ ही यह भी स्वतंत्रता था कि वह अपने समय-समाज के प्रभाव-भाव को भी समीचीनता, उपयुक्तता और चतुरता के साथ आत्मानुभूतियों को रखता हुआ, व्यंजित करे और अपनी कुशल कल्पना के द्वारा अपने प्रस्तुत समय-समाज तथा अग्रिम देश काल के लिए हितकारक उचित उद्देश्य-चिन्ता भी रुचिर रोचक रगों से रंजित कर सके। इन्हीं कारणों से प्रबंध-काव्य को मुक्तक की अपेक्षा अधिक मूल्य और महत्व दिया जाता है। प्रबंध-काव्य में मुक्तक की प्रायः सभी मार्मिकताएँ और समापेक्षित विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप में आ जाती हैं—किन्तु मुक्तक में प्रबंध-काव्य की विशेषताएँ प्रायः नहीं आ सकती हैं।

उक्त दोनों प्रकार के काव्यों से अतिरिक्त गीत काव्य में, जिसे काव्य का कोई भेद विशेष रूप से नहीं माना गया, किन्तु कवियों ने जिसे रुचिरता के

साथ रचा अवश्यमेव है, वह भी कदाचित् इसी विचार से कि कवि की स्वतंत्रता और प्रतिभापटुता आचार्यों के नियमों से नियन्त्रित न होकर निपट स्वच्छन्दता से कार्य करने की क्षमता प्रकट कर सके और कवि की महत्ता-सत्ता सर्वथा स्वतन्त्र कही और मानी जा सके। हृदय की मर्मानुभूतियों और भावनाओं का ही पूरा प्राधान्य रहता है, कहना चाहिए कि गीत-काव्य में हृदय पक्ष प्रधान और प्रबन्ध-काव्य मे बोध वृत्ति प्रधान रहती है, मुक्तक में एक प्रकार से दोनों का समन्वय-सा रहता है। इसी लिए प्रबन्ध-काव्य तो विशेषतया अध्ययनाध्यापन के लिए और मुक्तक तथा गीत काव्य प्रायः अनुभव करने के लिए रहता है। यद्यपि यह कोई दृढ नियम नहीं, कुशल कवियों ने कदापि अपने को ऐसे किसी नियम विशेष से बँधने नहीं दिया, उन्होंने मुक्तक और गीत-काव्य भी ऐसे रचे हैं जिनमें अध्ययनाध्यापन की पुष्कल सामग्री है। इसी प्रकार प्रबन्ध-काव्य को भी उन्होंने इस प्रकार लिखा है कि उसमें भावनानुभूति की ही प्रधानता और प्रबलता प्राप्त होती है। पठन-पाठन की गभीर वस्तु उसमें कुछ विशेष नहीं मिलती। अब तक प्राय. काव्यों के ऐसे ही रूप साहित्य-क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। मनुष्य में अन्य मनोवृत्तियों के साथ समन्वय की भी मनोवृत्ति प्रायः कार्य किया करती है, इसी की प्रेरणा से समन्वय-प्रिय कवियों ने प्रबन्ध-काव्य में भी मुक्तक का मञ्जुल समावेश सफलता के साथ किया और ऐसे काव्य रचे जिनमें प्रबन्ध पटुता भी प्राप्त होती है और साथ जिनके छन्द स्वतन्त्र रूप से मुक्तक छन्दों की भाँति भी पृथक् लिये जा सकते हैं। इस पर भी अभी तक काव्य के इन रूपों के समन्वय में भी गीत का समावेश प्राय. नहीं किया गया— केवल कुछ ही काव्यों से प्रसगवशात यथावसर और यथावश्यकता कहीं कहीं केवल अत्यल्पांश में ही गीत का सन्निवेश किया गया है—यथा केशव की रामचन्द्रिका में राम-विवाह के प्रसग मे ज्यौनार के समय गाली गवाई गई है। प्राय· कविजन ऐसे अवसरों और प्रसगों मे जब जहाँ गीत-वाद्य की अपेक्षा होती है, यही कहकर रह जाते हैं कि गायन-वादन हुआ। नाटक के क्षेत्र में प्रथम गीत-वाद्य समावेश यथावसर किया जाता था, किन्तु यह परिपाटी भी विशेष रूप से प्रचलित नहीं हो सकी। प्रस्तुत काव्य में यह विशेषता अवलोकनीय है। यथास्थान और यथावसर इसमें गीत विधान भी किया गया है। ऐसा करने से इसकी रुचिरता और रोचकता और भी बढ़ गई है। हम इस सम्बन्ध में अधिक न कहकर केवल इतना ही यहाँ कहना चाहते हैं कि

यथास्थान सन्निविष्ट गीतों में भी रचयिता ने सरसता और रुचिरता के साथ काव्योचित रमणीयता भी रखने का सफल प्रयास किया है। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं।

काव्य-परम्परा जो इस समय तक चल रही है, यही प्रकट करती है कि काव्य का रूप भले ही कोई रहे, चाहे प्रबध-काव्य का रूप रहे चाहे मुक्तक का, अथवा चाहे गीत-काव्य ही का रूप क्यों न रहे, काव्य की भाषा सर्वत्र सर्वदा एक ही रूप में रहा करती है, भाषा का यह रूप चाहे काव्योचित समुत्कृष्ट रूप हो चाहे सामान्य रूप हो, चाहे भावप्रधान गूढ़ गभीर और व्यजना-प्रधान रूप हो चाहे कला कौशल-कलित भाषा-भूषण ललित रूप हो, चाहे भाषा जटिल, सामासिक पदावली-पूर्ण और क्लिष्ट होकर श्लिष्ट हो चाहे सरल सुबोध और शिष्ट हो। काव्य में एक बार कवि ने जो रूप उठाया, उसी को वह बराबर सारे काव्य में पूरा निर्वाह करता रहता है। साहित्यिक सौष्ठव से समन्वित स्थायी सत्काव्यों में भाषा सर्वथा समुन्नत और अध्ययनापेक्षित रहती है, किन्तु सामान्य समय-समाजोपयोगी साधारण काव्यों में भाषा मुहावरे-दार, सर्वथा सरल, सुबोध और स्पष्ट रक्खी जाती है। भाषा के विविध रूपों का सुन्दर समन्वय प्राचीन परिपाटी के नाटकों ही में देखा जाता है—सस्कृत के पूर्वकालीन नाटकों में तो पात्र-भेद से भाषा-भेद रखने की परिपाटी प्राप्त होती है, किन्तु हिन्दी के नाटकों में नहीं। हाँ कुछ हिन्दी-नाटक ऐसे अवश्यमेव हैं जिनमें पात्र भेद से भाषा-भेद की परिपाटी की आभास मिलता है। स्व० श्री० बदरीनारायण जी चौधरी 'प्रेमघन' जी के कुछ नाटकों में यह बात सुचारु रूप से मिलती है। ऐसे ही कुछ अन्य नाटकों में भी यह भाषा-भेद-प्रणाली न्यूनाधिक रूप में परिलक्षित होती है, किन्तु इधर की ओर तो यह परिपाटी प्रायः लुप्त ही हो गई है। इसके कारणों की विवेचना का यहाँ समय और स्थान नहीं। श्री० स्व० 'प्रेमघन' जी के इसी विचार को लेकर उनके सच्चे प्रतिनिधि भ्रातृज श्री० उपाध्याय जी ने अपने इस सराहनीय काव्य में सार्थक और सफल करने का प्रशस्त प्रयास किया है। इस काव्य में पुरुष पात्र तो विशेषतया वर्तमान साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं और स्त्री पात्र प्रायः साहित्यिक ब्रज-भाषा का, अन्य पात्र यथावसर अपनी अपनी योग्यता या क्षमता के आधार पर भाषा के उत्कृष्ट और सामान्य रूपों का व्यवहार करते हैं। भाषा-भेद के इस प्रयोग से काव्य में एक नव्य भव्य विशेषता

आ गई है। इस प्रकार यह कौशल सर्वथा सराहनीय है, इसमें कवि को यथेष्ट सफलता मिली है और एतदर्थ भी वह बधाई के पात्र हैं। इसके कारण काव्य में रोचकता और रुचिरता भी बढ़ गई है। एक ही काव्य में व्रज-भाषा-माधुरी और खड़ी बोली की लुनाई क्रमशः यथास्थान प्राप्त होती जाती है, जिससे पाठक या श्रोता की आस्वादाभिरुचि उमंगित होती रहती है। इस भाषा-भेद-प्रयोग में एक भय यह कहा जाता है कि इससे प्रबंध-काव्य की प्रबंध-शृंखला और रस-प्रवाह-प्रगति को कुछ आघात सा प्राप्त होता है, किन्तु यदि कवि काव्य-रचना-कला में कुशल है तो इससे काव्य में वह और भी अधिक सरम्यता तथा भावगम्यता के साथ कला-काम्यता उपस्थित कर देता है। इससे कुछ वास्तविकता और स्वाभाविकता में भी विशेषता सी आ जाती है। इसमें कविता भाषा-पटुत्व तो प्रकट होता ही है, साथ ही उसकी भाषा प्रयोग-कला को कुशलता और भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों में भावानुभूति अभिव्यञ्जन-क्षमता का पूरा परिचय प्राप्त होता है। भाषा-भेद करता हुआ भी कवि यदि रस-भाव प्रवाह का यथेष्ट निर्वाह कर सकता है तो यह उसकी एक विशेष सराहनीय सफलता है, और वह इसके लिए सहृदय जनों से साधुवाद का अधिकारी है।

आज तक भी प्रबंध-काव्य-परम्परा में केवल कुछ ही उदाहरण ऐसे प्राप्त होते हैं जिनमें छन्दान्तर करते हुए प्रबंध-प्रवाह का उचित निर्वाह किया गया हो और विविध छंदात्मक शैली से रसभाव-प्रगति को अविकृत रखते हुए एक प्रबंध-शृंखला यथेष्ट रूप में चलाई गई हो। आचार्य केशवदासकृत राम-चंद्रिका ऐसे काव्यों में सर्वथा सराहनीय और समुत्कृष्ट रचना है, यह सहृदय सुयोग्य समाज में निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है। उस रसार्द्र-रम्य रचना-रत्न में अति शीघ्रता के साथ छंदान्तर करते हुए भी रस-प्रबंध-प्रवाह का पूरा निर्वाह हुआ है—जिससे केशव के काव्य-कौशल और पांडित्य प्रतिभा-पटुत्व का पूरा परिचय प्राप्त होता है। आधुनिक कालीन खड़ी बोली काव्य-क्षेत्र में छंदान्तर-शैली का सफल सदुपयोग सर्वोत्कृष्ट और प्रशस्त 'प्रिय-प्रवास' नामक अमर काव्य में प्राप्त होता है। तत्पश्चात् द्वितीय रुचिर रचना 'साकेत' में भी छंदान्तर शैली का उपयोग हुआ, हाँ तनिक एक दूसरे रंग ढंग के साथ। यह कार्य भी कवि के छंदाभ्यास और रस-परिपाक प्रयास-पटुत्व का परिचायक है। यह ठीक है कि प्रत्येक प्रकार का छंद प्रत्येक प्रकार

के रस-प्रवाह में सर्वथा सहायक और सफल नहीं होता, भिन्न-भिन्न रसों और भाव-भावनाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के छंद समापेक्षित होते हैं। रस-भावानुकूल छंदचयन ही कवि के काव्य-कौशल को उत्कर्षदायक है। यह भी ठीक है कि सभी प्रकार के रसों का सफलतापूर्वक यथेष्टोत्कर्ष एक ही अथवा केवल कुछ निश्चित छंद तथा छंदों के द्वारा उपस्थित कर सकना भी कवि-कला कौशल का श्लाघ्य उत्कर्ष परिचायक है। इस 'अवीचित उपाख्यान' नामक प्रस्तुत काव्य में विविध छंदात्मक शैली का उपयोग किया गया और इस चतुरता के साथ कि उसके कारण न तो रस प्रवाह में ही कहीं कुछ त्रुटि आ सकी है और न प्रबंधप्रगति पर ही कुछ अन्यथा प्रभाव पड़ सका है—दोनों का धाराएँ अविकल रूप में बराबर चलती रहती हैं—हाँ रसोद्रेक में इससे कुछ विशेष सहायता अवश्य मिलती है, क्योंकि यथेष्ट रस के लिए सदुपयुक्त छंद का प्रयोग किया गया है। छंदान्तर शैली के प्रयोग से आचार्य केशव पर कुछ कुशल आलोचकों ने प्रबंध-रस-प्रवाह में विकार आ जाने का दोषारोप किया है यद्यपि वह वस्तुतः समुपयुक्त और युक्ति न्यायसंगत नहीं। इस काव्य पर भी इसी प्रकार किया जा सकता है—किन्तु हम उसे भी समीचीन मानने में सहमत नहीं। यह वस्तुतः कवि-कौशल-परिचायक एक प्रशस्त विशेषता है जिसके लिए कुशल कवि की सराहना करते हुए इस शैली के प्रचार प्रबंधनार्थ प्रोत्साहन देना ही उचित है।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इस काव्य में और भी कतिपय नव्य-भव्य विशेषताएँ भी अवलोकनीय और प्रशंसनीय हैं। काव्य में वर्णन-शैली भी रुचिर और रुचिकर है। वर्णन की सार्थकता उसकी चित्रात्मकता और सजीवता पर बहुत अधिक आधारित रहती है। वर्णन दृश्य चित्रात्मक और मानसिक दशा अनुभूति कलात्मक रहता है। यह वस्त्वात्मक और भावात्मक होता है—काल्पनिक वस्तुओं का भी चित्रण उसमें आ जाता है। प्रस्तुत काव्य में वर्णन प्रायः सभी प्रकार का यथास्थान और यथावश्यकता प्राप्त होता है। दृश्य और अदृश्य दोनों जगत् इस काव्य में चित्रित हुए हैं। दृश्य-जगत् के नैसर्गिक और कृत्रिम-कलाकृत दृश्य अपने अपने सुन्दर रूपों में चित्रित हुए हैं। राजदरबार और स्वाभाविक वनोदेशादि के चारुचित्र प्रत्यक्ष से हो जाते हैं। दरबार के चित्रण में प्रसंगानुकूल नृत्य गायनादि का भी वर्णन भारतीय परम्परा का अच्छा परिचायक है। ऐसे प्रसंगों से कवि के संगीत-

कला-परिचय का पता चलता है। इसी प्रकार वन-वाटिका के वर्णन से विविध प्रकार के तरुलतागुल्मों, प्रसून-पादपों, कलरवकारी विविध विपंचियों आदि का परिचय प्राप्त होता है। इत्यादि वर्णन का महत्त्व काव्य में उद्दीपन विभाव के रूप में ही यद्यपि विशेषतया माना जाता है तथापि इसके कारण रसोद्दीप्ति के साथ ही विचारोद्दीप्ति भी होती है और इस प्रकार इनकी महत्ता और भी अधिक हो जाती है। दृश्य और तदन्तर्गत वस्तुएँ मन में विशेष विचारों को भी जाग्रत कराने में क्षम हैं। यह प्रत्येक कवि का अनुभव है, विचारों के कारण काव्य में भावानुभूति के साथ ही बोधवृत्ति को भी चैतन्यानद की अनुभूति भी होती है और ज्ञानतृषा भी शात होती है। इस प्रकार काव्य में भावना और ज्ञान का समन्वय हो जाता है। प्रस्तुत काव्य क कई वर्णना म इसके सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। इन्हीं दृश्यों के नैसर्गिक रूप-चित्रणों में मानव-प्रकृति के साथ ही बाह्य प्रकृति का भी मनोरम बाँका झाँकी देखने को मिलती है।

भाव भावनात्मक रमणीयता के साथ ही भाषा की सुरूप-शालिमा और अलकृताकृति भी काव्याकर्षण और हृदय हर्षण म अत्युपयुक्त सिद्ध होती है। इसी लिए काव्य-भाषा को विविधालकारों से अलकृत और शब्दावली के सुवर्णालकारों से झकृत करने की आवश्यकता को वल दिया गया है। प्रस्तुत काव्य-भाषा म यद्यपि अलकार-योजना की अधिकता विशेष नहीं तथापि कोई विशेष ऊनता भी नहीं, वरन् कहा जाना चाहिए कि भाषा सुवर्णाभूषणों से समलकृत होती हुई अर्थालंकार चमत्कार से भी चारुचर्चित है। भाषा में कहीं कहीं कुछ विशेष शब्द और प्रयोग ऐसे भी आये हैं जिनका प्रयोग प्रचार प्राय साहित्य-भाषा में बहुत ही सामित और न्यून है। किन्तु ऐसे शब्दों और प्रयोगों का प्रयोग उनकी विशिष्ट भाव-व्यञ्जना के कारण आवश्यक सा प्रतात होता है। भाषा सर्वथा सयत और सरस सुबोध है। सवादों में भाषा का स्वरूप विशेषतया व्यावहारिक है, किन्तु अन्यत्र वह सर्वथा साहित्यिक सौष्ठव सयुक्त है। छदान्तर होते हुए भी तथा भाषान्तर होते हुए भी भाषा और शैली दोनों में ही मञ्जुल प्रवाह है, सरल प्रगति है, और धारावाहिकता है, जिससे कथा गति और रस प्रगति को पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। भाषा साधारणतया सर्वत्र नियम नियन्त्रित और सुव्यवस्थित है। यहीं यह भी लिखना अप्रासगिक नहीं कि काव्य मे कतिपय ऐसे छदों का भी प्रयोग किया

गया है जिनका प्रयोग साधारणतया काव्यों में बहुत ही कम किया गया है—यह एक कठिनाई और कवि के मार्ग में रही है। क्योंकि सुप्रयुक्त तथा सुपरिचित छंदों की रचना में कवि को कुछ अधिक सुविधा रहती है, और उसके अनुकूल शब्दावली प्रायः अधिक कवियों के पास रहती तथा सरलता से रचना के समय में सुलभ होकर प्राप्त हो आया करती है और कवि को तदर्थ शब्द-संचयन और शब्द-संगुंफन में अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। इसी लिए प्रायः अति प्रचलित छंदों में काव्य लिखने की अपेक्षा, अल्प प्रयुक्त छंदों में रचना करना कवि के लिए विशेष उत्कर्षदायक और प्रतिभा परिचायक होता है। छंद-चयन में प्रायः कविजन इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि छंद सर्वथा सुगेय और सुपाठ्य रहे, उनका प्रगति-प्रवाह लयमय होकर स्वभावतः प्रिय और सुखद हो। इसी लिए काव्य में सुगेय छंदों को ही विशेष स्थान दिया जाता रहा है। कवि तथा पाठक दोनों ही इसके कारण केवल कुछ ही छंदों के अभ्यस्त हो जाते हैं, और छंद-शास्त्र से अन्य छंद शनैः-शनैः विस्मृति के गर्त में लीन विलीन हो जाते हैं। कवियों का एक कर्त्तव्य यह भी है कि वे अपने काव्यों के द्वारा छंद-शास्त्र की भी रक्षा करें और उसे समाज और साहित्य के क्षेत्र से परे नहीं जाने दें। इस विचार से ऐसे अल्प-प्रयुक्त छंदों के उपयोग के लिए भी हम प्रस्तुत काव्यकार को बधाई देते हैं। सम्भव है कि कुछ पाठकों को ऐसे अल्प-प्रयुक्त छंदों के पढ़ने में कुछ असुविधा और तत्कारण कुछ अरुचि-सी प्रतीत हो, किन्तु उन्हें उक्त विशेष विचार को ध्यान में रखते हुए इनका स्वागत करना चाहिए।

शृंगार तथा वीर रस प्रधान प्रस्तुत काव्य के कथानक की ओर संकेत कर देना भी यहाँ समीचीन जान पड़ता है। कहा गया है कि यह एक पौराणिक चरित्र है और सूर्यवंश से सम्बन्ध रखता है। प्रायः महाकाव्यों में कृष्ण और राम-सम्बन्धी कथानक लिये गये हैं। नैषध और किरात तथा माघ काव्य का सम्बन्ध महाभारत और कृष्ण से है। रघुवंश सूर्यवंश-काव्य है। यद्यपि इस काव्य में धार्मिक या साम्प्रदायिक तत्त्वाधार नहीं, तथापि कह सकते हैं कि यह राम-वंश या सूर्यवंश-सम्बन्धी होकर एक प्रकार से राम-काव्य-परम्परा में आता है। साथ ही यह साहित्य-नियमानुकूल महाकाव्य की श्रेणी में नहीं, हाँ, प्रबन्ध-काव्य की कक्षा में आ जाता है। वास्तव में इसे चरित या कथा-काव्य ही कहना अधिक युक्ति-संगत है। ऐसे काव्यों का प्रमुख उद्देश्य चरित्र-

चित्रण और सदाचरण-शिक्षण ही हुआ करता है। इस प्रस्तुत काव्य से भी सच्चरित्रता तथा सदाचार की व्यञ्जना प्राप्त होती है। अवीक्षित'के चरित्र में अपनी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, इसी प्रकार भामिनी के भी चारुचरित्र में अपनी विशेष महत्ता है। विज्ञ पाठक स्वयमेव चरित्र-चित्रण की चारुता देख परख लेंगे। हमारा काम यहाँ इनकी विवेचना करना नहीं।

वास्तव में यहाँ हमने केवल प्राक् प्रवचन के ही रूप में इस काव्य पर कुछ विहगम दृष्टि डालते हुए सांकेतिक ढग से इसकी विशेषताओं पर सूक्ष्म कथन किया है। हमारा उद्देश्य इस काव्य की मार्मिक और सर्वाङ्गीण आलोचना का करना नहीं, वस्तुत यह कार्य तो सहृदय, सुयोग्य पाठकों और समालोचकों के ही लिए रहता है। हमारे इस लेख से सम्भवत सहृदय काव्यानुयायियों को कुछ विशेषतासूचक सकेत मिल सकेंगे। यही हमारा इसके लिखने में मुख्य विचार भी रहा है। हम यहाँ सत्समालोचक के रूप में तो नहीं, वरन् एक साधारण वस्तु-परिचायक के रूप में ही हैं। एक पाठक और काव्य प्रेमी के रूप में हम अपनी ओर से यह भले ही कह सकते हैं कि इस काव्य की उक्त विशेषताएँ हमें आकर्षक और हृदयवर्द्धक हुई हैं। आशा है अन्य सहृदयजनों के लिए भी वे विशेषताएँ तथा उनसे अतिरिक्त अन्यान्य विशेषताएँ भी चाहने और सराहने के योग्य होंगी।

अन्त में हम इस श्लाघ्य काव्य की सफलता पर इसके रचयिता श्री० प० नर्मदेश्वर जी उपाध्याय, एडवोकेट को हार्दिक बधाई और साधुवाद देते हैं। उन्होंने अपने पितृव्य श्री० स्व० प० बदरीनारायण जी चौधरी 'प्रेमघन' का इसके द्वारा पूरा प्रतिनिधित्व किया है। प्रेमघन जी हिन्दी साहित्य-सदन के एक जगमगाते हुए अनुपम रत्न थे। काव्य नाटक, निबन्ध और आलोचनादि कतिपय साहित्य विभागों म उनकी रमणीय और अनुकरणीय सुकृतियाँ हैं। भाषा और शैली के क्षेत्रों में भी उनकी महत्तामयी देन है। उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी और प्रतिनिधि होते हुए श्री पडित नर्मदेश्वर जी उपाध्याय ने इस कृति के द्वारा जो सरस्वती सपर्या की है, उसकी सहृदय सुयोग्य सत्काव्यानुरागी और साहित्यसेवी ससार सराहना करेगा। और इस रुचिर रचना का समादर करेगा, यही हमारी आशा और मगल कामना है।

१२ बी बेलीरोड, प्रयाग
८-१०-५२

बुधबृन्दानुरागाकाङ्क्षी
रामशङ्कर शुक्ल "रसाल"
एम० ए० डिलिट

श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय
एम० ए०, एल-एल० बी०
एडवोकेट हाईकोर्ट, उत्तर प्रदेश

उपस्कार

कनाना मानस नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि ।
यत्र हस वयांसीव, भुवनानि चतुर्दश ॥

आत्मानदाप्ति के अभिप्राय से, इस चारु चरित्र पर इस काव्य का लिखना कई वर्ष पूर्व मैंने आरम्भ किया, और शनै-शनै इसे पूर्ति की ओर ले चला। जब जब अवकाश मिला और उर में उमग-रग आया, इस रचना का कार्य करता रहा। भगवत्कृपा से यह पूर्ण हो गया। इस काव्य के विषय में कुछ विशेष विवेचनालोचना के करने का न तो मुझे वस्तुत कुछ अधिकार ही है और न मैं ऐसा अधिकार चेष्टा करना समीचीन हा समझता हूँ। हाँ, इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस काव्य की रचना में एक नवीन मार्ग का अवलम्बन किया गया है, इससे यहाँ उस मार्ग पर कुछ प्रकाश डाल देना आवश्यक प्रतीत होता है।

यद्यपि इस काव्य का समग्र कथा प्रबन्ध मूलत ब्रज भाषा म है, तथापि एक विशेषता यह अवश्यमेव रक्खी गइ है कि इसके पुरुष-पात्र यदि खरी बोली में—मेरे पितृव्य प्रेमघनजी का यह मत था कि खरी बोली ग्राम्य भाषाभिव्यञ्जन विधि है अत वस्तुत इसके लिये खरी बोली ही उपयुक्त शब्द है—तो स्त्री-पात्र ब्रज भाषा म बोलते हैं क्योंकि ब्रज भाषा में स्वाभाविक मसृणता, मृदुता, मधुरता और मञ्जुलता है जो विशेषतया स्त्रियोचित है।

इस काव्य में यथा स्वाभाविकता के साथ ही कथा का विकसित और प्रवाहित करना ही मेरा मुख्य उद्देश्य रहा है और मेरी यह धारणा है कि प्रबन्ध-काव्य का यही एक परम लक्ष्य है कि उसम कथा वस्तु का निदर्शन, भाव विकास और कथा का क्रम स्वाभाविक हो। कथा निरूपण म, स्थान स्थान पर यथावसर सगीत का भी समावेश किया गया है इससे कि भारतीयों में विशेष अवसरों पर सगीत-समारोह, पूर्व काल से ही चला आ रहा है।

रही बात, ब्रज भाषा और खरी बोली, दोनों के प्रयोग से युक्त काव्य-रचना की प्रणाली की उसे मैंने अपने पूज्य पितृव्य श्री प्रेमघनजी के एकाकी नाटक, 'प्रयागरामागमन' से लिया है। उक्त नाटक में रामादि पुरुष-पात्र तो खरी बोली म बोलते हैं और सीतादि जसे स्त्री-पात्र ब्रज भाषा म। उस महान् कवि की गोद में दो वर्ष की अवस्था से नौ वर्ष तक पुत्र-स्नेह भाजन होकर लालित-पलित होने और तदुपरान्त भी उनसे आजीवन पितेव पुत्रवत् व्यवहार के पाने

प्राकृत के निर्माताओं ने उसे, कविता में कोमलता के लाने का गुण लाने के लिए मुकर कर दिया, क्योंकि "कोमल कान्त पदावली" कविता में अत्यन्त अनिवार्य गुण है, यह कहना अनावश्यक है।

४—व्रज-भाषा की बनावट कविता के विशेष उपयुक्त है और यह भी कहिए कि यह पिंगल के ललित छन्दों के विशेष अनुकूल हो गई है अथवा सम्भव है, उसका ही ध्यान रखते हुए कुछ छन्दों की गति निश्चित् की गई हो। यह मेरा अनुमान-मात्र है।

५—बोलचाल की भाषा और कविता की भाषा में सदा अन्तर रहा है। और रहेगा भी। यथा अँगरेजी में—

६—ध्वनि-शास्त्रज्ञों का मत है कि जिस भाषा में स्वर-प्रधान शब्दों का आधिक्य और व्यञ्जन-प्रधान शब्दों की अल्पता होगी, वह विशेष कर्णप्रिय हो काव्योचित होगी। इसी कारण से लेटिन, अँगरेजी की अपेक्षा विशेष कर्णप्रिय मानी जाती है।

चाल की भाषा का पद्य में व्यवहार करते हैं, तब उन्हें भी उसे काव्योपयुक्त भाषा समझना ही चाहिये। बस तब क्या था, 'खड़ी बोली' खड़ी हो गई। श्री मैथिलीशरण ऐसे सुपूतों ने उसे अपना लिया और खड़ी बोली का बोलबाला हो चला। काव्य-भाषा की समस्या अब यों हल हो गई। साधारण बोलचाल की भाषा पद्यों में चलने लगी। एक नया युग आरम्भ हो गया ब्रज भाषा के ज्ञानाभ्यास से भी पिंड छूटा। अब क्या था? जैसे मीरजापुर के खजड़ीवाले

के कारण उनके भावों और रचनाओं से पूर्णतया प्रभावित होना भी मेरे लिये स्वाभाविक ही है।

भाषा

मुझमें ब्रज-भाषा से कुलागत पक्षपात का होना भी यद्यपि अवश्यम्भावी है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से भी विचार करने पर मुझे भी अन्य सहृदय काव्य-रसिकों के समान खरी बोली की अपेक्षा ब्रज-भाषा में ही विशेष माधुर्य-मार्दव प्रतीत होता है। जिस ब्रज-भाषा का प्रयोग इस काव्य में हुआ है, उसे 'प्रेमघनी ब्रज-भाषा' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। वह ब्रज-भाषा रूप यह है, जिसमें ब्रज-भाषा के प्रयोग-प्राचुर्य से विगलित तथा दुर्बोध भूत शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता, यथा:—भमन (भवन) गाम (गाव) कुमरि (कुमारी) अप (अपना) भामतो (भावना) विंजन (व्यञ्जन) कॅमाई (कमरी) आदि। संस्कृत के उन्हीं शब्दों का उसी सीमा तक प्रयोग किया जाता है जहाँ तक जो शब्द ब्रज-भाषा की प्रकृति के अनकूल हों। सम्भवतः भविष्य में प्रयोगोपयोगी होने के लिये प्रेमघनजी ने अपनी इन विशेषताओं के साथ इस नवीन शैली का प्रयोग किया था, किन्तु उनकी कविताओं के प्रकाशन में इतना विलम्ब हुआ कि यह प्रेमघन-शैली आगे के कवियों के समक्ष सब प्रकार नहीं आ सकी। मेरे विचार में यह शैली काव्य-रचना के लिये परम उपयुक्त है।

जिस समय स्व० श्री पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने खरी बोली की कविताओं का प्रकाशन 'सरस्वती' में आरम्भ किया, उस समय कविता-रसिक इस नये आयोजन से परम असन्तुष्ट और खिन्न हुए, किन्तु प्रणाली को रोकने में समर्थ न हो सके। यह भी ठीक है कि उन्होंने इसके विरोध में कुछ विशेष प्रयत्न भी नहीं किया। हिन्दी-संसार में उस समय, 'सरस्वती पत्रिका' अपनी सचित्रता और सुचारुता में अद्वितीय थी। उसमें नया रंग-ढंग लाकर, उसे 'क्रिमतः परम्' करने की, द्विवेदीजी में उत्कट अभिलाषा थी। खरी बोली के साथ ही, संस्कृत के भी वे पंडित थे, अतएव 'कालिदास की निरंकुशता' नाम की एक लेख-माला, सरस्वती-पत्रिका में प्रकाशित करके हिन्दी-संसार में खलबली सी मचा दी। व्याकरण का भी प्रपंच उठा दिया और 'भारत मित्र' के सम्पादक स्व० श्री बालमुकुन्द गुप्त से, संस्कृत और हिन्दी के व्याकरण-नियमों पर घोर समर हुआ। बस, हिन्दी-सेवियों की आँखें द्विवेदीजी की ओर घूम गईं और उनके पक्षी-विपक्षी दोनों ने ही अब यह देखा कि द्विवेदीजी सरीखे विद्वान् जब बोल-

चाल की भाषा का पद्य में व्यवहार करते हैं, तब उन्हें भी उसे काव्योपयुक्त भाषा समझना ही चाहिये। बस तब क्या था, 'खड़ी बोली' खड़ी हो गई। श्री मैथिलीशरण ऐसे सुपूतों ने उसे अपना लिया और खड़ी बोली का बोलबाला हो चला। काव्य-भाषा की समस्या अब यों हल हो गई। साधारण बोलचाल की भाषा पद्यों में चलने लगी। एक नया युग आरम्भ हो गया ब्रज भाषा के अनाभ्यास से भी पिंड छूटा! अब क्या था? जैसे मीरजापुर के खजड़ीवाले अपढ़ होते हुए भी, बड़ी मार्मिक और आलोचक कजरी बना लेते हैं, वैसे ही सामान्य व्यावहारिक खरी बोली में भी सभी नवसिखिये कविता बना चले। यों खड़ी बोली चली तो चल ही पड़ी और चलती ही गई और आज भी चल रही है।

किन्तु पिंगल का आधिपत्य, कविता में फिर भी बना ही रहा और खरी बोली की भी कवितायें प्राय पिंगलानुसार होती रहीं। किन्तु अनभ्यस्त नव-सिखियों के लिये छन्द-प्रबन्ध कष्ट-साध्य और असाध्य सा लगा। अन्धाधुन्ध मनमानी पद्य-रचना के मार्ग में पिंगल भी एक बड़ा भारी रोड़ा था जो शीघ्र ही दूर कर दिया गया। इसके प्रधान कारण यों थे :—

(१) द्विवेदीजी ने अन्त्यानुप्रास-हीन संस्कृत के वर्णिक वृत्तों की रचनाओं की ओर ध्यानाकर्षण किया।

(२) अँगरेजी-शिक्षा प्रचार उत्कर्ष प्राप्त कर रहा था और शेक्सपियर आदि के ब्लेन्क वर्स की नकल की ओर कालिज के विद्यार्थी-कवियों का ध्यान आकृष्ट हो रहा था। बीसवीं शताब्दी के अँगरेजी काव्य-रचना की रूप-रेखा वहाँ के मासिक पत्रों के द्वारा, अँगरेजी शिक्षा दीक्षावाले भारतीयों के दृष्टि-पथ पर आई।

हम भारतीयों में चाहे और कोई विशेषता भले ही न हो, किन्तु यह विशेषता तो अवश्यमेव है कि हम नक्काल ऊँचे दर्जे के हैं। मुसलमानों का राज्य आया तो उनकी वेष-भूषा, और रहन सहन नकलकर हमने उनको मात कर दिया और जब अँगरेज आये तब उनके हम मुरीद बनकर, उनका सा नाच नाचने लगे। इसी प्रवृत्ति ने हमारी कविता की परिपाटी और परम्परा की रूपरेखा का भी पलट दिया। क्रमश अँगरेजी कविता की भी नकल हिन्दी में होने लगी और लगभी सिप्लीकाई या मिन्न के सदृश नये विद्यार्थियों की आधुनिक खरी बोली की कविता ने सुचिर काव्य सोमनाथ का विध्वंस कर दिया। यह भी कहा जाने लगा कि कविता वास्तव में लयाधान है और इन लँगड़ी सिप्लीफाइ रूपधारी कविताओं में उत्कृष्ट रूप से लय-लालित्य है।

प्राकृति के निर्माताओं ने उसे, कविता में कोमलता के लाने का गुण लाने के लिए सुकर कर दिया, क्योंकि "कोमल कान्त पदावली" कविता में अत्यन्त अनिवार्य गुण है, यह कहना अनावश्यक है।

४—व्रज-भाषा की बनावट कविता के विशेष उपयुक्त है और यह भी कहिए कि वह पिंगल के ललित छन्दों के विशेष अनुकूल हो गई है अथवा सम्भव है, उसका ही ध्यान रखते हुए कुछ छन्दों की गति निश्चित् की गई हो। यह मेरा अनुमान-मात्र है।

५—बोलचाल की भाषा और कविता की भाषा में सदा अन्तर रहा है। और रहेगा भी। *यथा अँगरेजी में—*

६—ध्वनि-शास्त्रज्ञों का मत है कि जिस भाषा में स्वर-प्रधान शब्दों का आधिक्य और व्यञ्जन-प्रधान शब्दों की अल्पता होगी, वह विशेष कर्णप्रिय हो काव्योचित होगी। इसी कारण से लेटिन, अँगरेजी की अपेक्षा विशेष कर्णप्रिय मानी जाती है।

इस विशिष्ट गुण से व्रज-भाषा ही अधिक सम्पन्न है और यही कारण उसके श्रुति-माधुर्य के होने का है। यथा—

कहूँ लौं (कहाँ तक) कीबो (करना) चहूधा, बिसारी, इतै, चवैया, आँजे, निहारीं, भावते, सरसै। ऐसे अनेक उदाहरण संकलित किये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध होगा कि व्रज-भाषा में स्वर-प्रधान अक्षर-सम्पन्न शब्दों का आधिक्य है।

जिस प्रकार हम रोटी, दाल, चावल ही सामान्यतः खाते हैं, किन्तु तीज, त्योहार, मेहमानदारी और चाटुकारिता में पूरी कचौरी, बड़ा फुलौरी और उनके व्यंजन युक्त भोजन करते और कराते हैं, उसी प्रकार का अंतर बोलचाल की भाषा की कविता में और सर्वगुण आगरी व्रज-भाषा की कविता में है।

यह गुण-गान केवल व्रज-भाषा से स्नेह और कृतज्ञता-मान प्रदर्शन के लिए ही नहीं है, वरन् सत्य कथन है और कविता में उसकी विशिष्टता के प्रकट करने के ध्येय से है। हिन्दी को गौरवान्वित करनेवाली, पीयूष प्राशन सी अमरत्व प्रदान करनेवाली, रस-रत्नाभरण देनेवाली व्रज-भाषा के प्रति अकृतज्ञता-जनित निरादर की अकारणता का प्रदर्शन के विचार से है जिसमें व्रज भाषा बाद में नाट गो बाई डिफाल्ट (May not go by default) अप्रतिवादित न रह जाय।

कथा-वस्तु

काव्य-शास्त्रानुसार, महाकाव्य की कथा पौराणिक अथवा ऐतिहासिक हो सकती है। यद्यपि वेद और पुराण भी हम आर्यों के इतिहास-ग्रन्थ ही हैं, किन्तु आजकल इतिहास का तात्पर्य इधर के दो हजार वर्षों के इतिहास से है। इधर का भारतीय इतिहास विदेशीय आक्रमण, अत्याचार और वैमनस्य से इतना आकीर्ण है कि अपने पराभव, अपनी त्रुटियों और न्यूनताओं का चित्रण करना, अरुचिकर ही प्रतीत हुआ। महाभारत की मूल कथा, एवं रामायण की कथा पर ऐसे दिग्गज कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है कि उनसे भी अलग रहना ही समीचीन समझ पड़ा।

कुछ पुराणों में कथा-आखेट आरम्भ किया तो मार्कण्डेय पुराण में अवीक्षित चरित्र मिला, जिसके आख्यान को पढ़कर चित सन्तुष्ट और गद्गद् हो गया। प्रत्येक भारतीय इस कथा को पढ़कर गौरवान्वित हो जायगा और अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के रखने में उपादेयता है इसमें सत्यता देखने लगेगा। इसके चरित्र-नायक धीरोदात्त, उनकी स्त्री आदर्श भारतीय महिला है। इनके पिता आदर्श पिता और चरित्र नायक का पुत्र भी आदर्श राजनीति निपुण है। इन सबका यहाँ विशेष गुणगान निरर्थक ही सा है, क्योंकि पाठक काव्य पढ़कर स्वयं उसकी विवेचना कर सकेंगे।

अवीक्षित

यह सूर्यवंशी राजा थे। इससे कि पुराण के १३६ वें अध्याय में कहते हैं:
'एवं विधाहि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजा'

अब, यह विचारणीय है कि अवीक्षित, श्री रामचन्द्रादि के पूर्वज थे कि उनके उत्तराधिकारियों में से थे।

मार्कण्डेय पुराण निःसन्देह 'भारत' के पश्चात् लिखा गया, क्योंकि जैमिनि ऋषि इसके प्रथम अध्याय में प्रश्न करते हैं।

भगवन् भरताख्यानं व्यासे नोक्तम् महात्मना।

....

....

तदिदं भरताख्यानं बह्वर्थं श्रुति विस्तरम्।
तत्वोज्ञातुकामोऽहं भगवॅस्त्वामुपस्थितः।

इस प्रश्न के उत्तर में, द्रौपदी का क्यों पाँच पाण्डवों से विवाह हुआ और

छन्दों के बाहुल्य पर। क्या प्रयोजन, क्या उद्देश्य और क्या उपादेयता थी, इसमें ? इस पर विचार करते करते मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इनकी उपादेयता विविध प्रकार के भावों के प्रदर्शन में क्षमता आने में है। जैसे वर्णनात्मक अंशों में अधिक मात्राओं के छन्दों की उपयोगिता होगी और भावात्मक प्रसंगों पर भावानुसार छोटे और बड़े छन्दों की। इस निष्कर्षानुसार इस काव्य में भावानुसार छन्दों का प्रयोग किया गया है और आशा है इस योजना से रसिक पाठकगण सतुष्ट भी होंगे। उदाहरण के लिये, दूत राजाओं को स्वयंवर की सूचना देने जा रहा है। यहाँ पद्धरी छन्द का प्रयोग हुआ है जो बिना कवि के कहे स्वय छन्द ही प्रकट कर रहा है कि दूतगण वेग से सूचना लेकर जा रहे हैं।

तब चले दूत सब दिसिन चार।
साडिन बाजी गज पै सवार॥ पृ० १०

पुनः भामिनि अपने मनोनीत पति अवीक्षित की कारा स्थिति पर दुःखी मन हो विचार कर रही है। ऐसी परिस्थिति में भाव स्वभावतः थोड़े शब्दों में निसृत होते हैं इससे चन्द्र छन्द विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है।

कौन रही जल्दी मेरे नाथ
झलक एकही मैं भई सनाथ॥
भाग्य को सराहत रही दासी।
है हौ सीता सी पद—उपासी॥ पृ० ३७

इसका अब विशेष रूप से यहाँ विवरण न बढ़ाकर पाठकों की विज्ञता, रसिकता और कुशाग्रता ही पर इसे छोड़ देना समीचीन प्रतीत होता है।

अधिकाश महाकाव्यों में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है अथवा कम से कम एक-दो सर्ग में तो हुआ ही है, किन्तु इस काव्य के एक ही सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य-शास्त्र मे महाकाव्य के एक दो सर्ग में ऐसा हो सकता है यथा साहित्य दर्पणे षष्ठ परिच्छेदे :—

नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचन भवेत॥

इसमें सन्देह नहीं कि अन्तिम अनुशासन का पालन इस काव्य में नहीं किया गया, केवल इस धारणा से कि कथा के जानने की उत्कंठा उत्तेजित हो,

इसी से कथा का प्रकथन भी नाटकोपयुक्त किया गया। इस निरंकुशता के अर्थ क्षमा प्रार्थना है।

संस्कृत वाक्यावली

२—सस्कृत वाक्यों का प्रयोग कभी भी इसके पूर्व काव्यों में नहीं हुआ है। इस प्रयोग का कारण यह है कि कथा प्राचीन समय की है, जब सस्कृत ही सुपठितों में व्यवहृत होती थी और बात-चीत में जैसे हम सब कहीं कहावतें, कहीं तुलसी और कहीं सूर के पद्यांशों का व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार स्वाभाविकता के प्रदर्शनार्थ, सस्कृत पद्यांशों अथवा वाक्यांशों का प्रयोग हुआ है।

यथा—सहसा न विदधीत च क्रियाम् पृ० ६१
दैवो धावति पचमः पृ० ४७
धर्मस्य सूक्ष्मागतिः पृ०१३२ इत्यादि

सर्ग २१वे में जहाँ पर करन्धम और अवीक्षित के वाणप्रस्थ और गृहस्थाश्रम पर वाद-विवाद के अवसर आये हैं वहाँ पर गीता, मनु-स्मृति से अविकल वाक्य उद्धृत किये गये हैं। यह भी स्वाभाविकता के प्रदर्शनार्थ ही है।

३—स्वाभाविकता की ही धारणा से नाच-रग को भी यथास्थान स्थान दिया गया, क्योंकि अतीत काल से ही उत्सवों में इसे प्रधान अग समझा जाता रहा है। मगल-कार्य और अन्त्येष्टि में यही उपक्रम भेद कराता है। भारतीयों में अन्त्येष्टि में भी खान-पान बडे समारोह से होता है, किन्तु नृत्यादि मगल अवसरों पर ही उपयुक्त समझा जाता है, जिसका अबाध रूप से आज तक प्रचार है। यह कहना कि यह यवन-काल का दूषण है, अनर्गल है। कविकुल श्रेष्ठ, कुलपति भरद्वाज ऋषि ने तो भरत के आतिथेय मे सामान्याओं को भावातीत समादर दिया था और अयोध्यावासी कहने लगे थे :—

अप्सरों गण सयुक्ताः सैन्य वाचमुदैरयन।
नैवायोध्या गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान॥
कुशल भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम्॥
.. .. ६१ वे सर्ग अयोध्या काड।

यदि उत्सवों में गान-वाद्यादि आवश्यक है तो पश्चिमीय प्रथा से हमारी प्राचीन व्यवस्था कहीं अच्छी थी। आजकल जो स्कूल-कालिजों में एक नूतन पश्चिमीय उपक्रम का व्यवहार किया जा रहा है, उसके विरुद्ध कुछ कहना

तो मानो, विरोध का ही खड़ा करना है। "कालो ही दुरतिक्रम'—यही कहना पर्याप्त है।

अस्तु, स्वयम्बर, भामिनि विवाह, पुत्रोत्सव में भारतीय संस्कृति के अनुसार नृत्यगानादि का सन्निवेश किया गया, और इस विचार से और भी कि जिस प्रकार कालिदास ने तापस जीवन को तिरोहित होते हुए देख 'अभिज्ञान शाकुन्तल' से उसे अमर कर दिया, उसी प्रकार सुप्रथा अथवा कुप्रथा का वर्णन कर, इसे ऐतिहासिक महत्त्व दे दिया गया।

४—कथा वर्णन में स्वाभाविकता या तथ्यता के कारण जब नृत्यगान का समावेश किया गया तो गीत काव्य का जो उसका अंग अथवा रूप ही है, आना भी अनिवार्य हुआ।

यह गीत मेरे यों ही अनियमित मनगढ़न्त नहीं हैं किन्तु प्रसिद्ध और स्वीकृत ताललयों पर आधारित हैं। महफिलों के अतिरिक्त और स्थानों में भी संगीत का सन्निवेश होता है जिसकी उपयोगिता का सहृदय पाठक स्वयं विचार कर लेंगे।

गान्धर्व दल के वर्णन में शृंगार का बीभत्स रूप भी चित्रित किया गया है, जिसको रीति कालीन कवि उपयुक्त ही कहते, किन्तु यहाँ गान्धर्व जीवन की समालोचना के रूप में उसका चित्रण किया गया है।

यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि संगीत शास्त्र को जो भारत में उच्च शिखर पर आसीन है, यथोचित स्थान महाकाव्यों में कवियों ने नहीं दिया। महाकाव्य जन जीवन और जन का तथा तत् सामयिक समाज संसार का सूक्ष्म प्रदर्शन है। इस पर केवल इतना और कहना है कि काव्य में नारद की वीणा मोहक थी और अर्जुन नाट्याचार्य थे इतना ही कहना पर्याप्त कभी नहीं कहा जा सकता। विशेषतया उस देश के कवियों के काव्यों के लिए, जिसके परम प्रतिष्ठित और मान्य सामवेद में गायन कला की महत्ता सत्ता प्रतिष्ठित है। यों तो समग्र वेद ही स्वर भूषित है।

५—ग्रामीण शब्दों का प्रयोग। विद्वान् एवं सुकवि रसाल जी से मेरा इसमें वैमत्य रहा है। वह गँवारू भाषा का प्रयोग ग्राम्य प्रयोग समझते हैं और इसे काव्य साहित्य की प्रकृति के विरुद्ध मानते हैं यद्यपि मैं उनके काव्य संशोधन परिश्रम का परम आभारी हूँ, तथापि इसमें 'तरह देना' अपने सिद्धान्त

के अनुकूल न था। इसी से उन प्रयोगों के ज्यों के त्यों रखने का आग्रह मैंने किया।

मेरी धारणा है कि जिस प्रकार ग्राम्य गीतों के संकलन से साहित्य-भंडार की सम्पूर्ति वाञ्छनीय है, उसी प्रकार उन गँवारू शब्दों को भी जो विशिष्ट भाववाचक है, साहित्यिक अमरत्व प्रदान करना विधेय है। इस धारणा से इस काव्य में अनेक स्थलों पर गँवारू भाषा का प्रयोग हुआ है। यथा 'बनचरों' और 'दनुसुत दुर्दुरूट' की, बोलचाल में तथा, 'भहरावै', 'हलै' 'मकुर्ना, 'ढरकायें' 'हरवराय' 'अकस-मकस' 'सनाका' 'रौंदत' अनेक इस प्रकार के असाहित्यिक शब्दो को भी साहित्यिक बाना दिया गया है।

६—प्रकृति वर्णन में विज्ञ पाठक यहाँ यह विशेषता देखेंगे कि जिस वृत्त का आख्यान उस सर्ग में वर्णित है, उसके ही समनुकूल प्रकृति-चित्रण भी किया गया है, अथवा यह भी कह सकते हैं कि यथास्थान प्रकृति वर्णन से ही पाठक अनुमान कर सकते हैं कि किस प्रकार की कथा का सन्निवेश उस स्थान पर है।

७—यह काव्य सुपठित व्यक्तियों के मनोरंजन के लिये ही लिखा गया है जैसे अँगरेजी में 'लेडी आफ दी लेक', 'ले आफ दि लास्ट मिन्स्ट्रल' लिखे गये हैं। अस्तु केवल कथा का विकास ही प्रवाह रोचकता के साथ हो यही मुख्य ध्येय रहा है, अलंकारादि इतस्ततः जो स्वतः आ सके वे आ गये हैं। इसी दृष्टिकोण से इस काव्य का अवलोकन सहृदय जन यदि करें तो उपयुक्त होगा।

८—मेरी धारणा में केवल एक ही रस है और वह शृङ्गार-रस है जिसके अप्राप्ति अथवा व्याघात में इतर रागात्मिक वृत्तियों की उत्पत्ति होती है। इसकी विशेष विवेचना 'प्रेमघन कला समीक्षा' में किया है किन्तु यहाँ पर संक्षेप में एक उदाहरण से स्पष्ट किये देते हैं, क्योंकि इस काव्य में 'विरह शृङ्गार' 'विक्षेप शृङ्गार' 'हास्य शृङ्गार' आदि विज्ञ पाठकों को मिलेंगे। यथा स्वराज्य प्राप्ति: इसके उपायों में व्याघात से नेताओं में क्रोध होता, कोई कोई साधक गण रौद्र, भयानक और विभत्सोत्पादक-वृत्ति बिना किये सन्तुष्ट नहीं होते, गोली गोले सहन में वीर रागात्मक कार्य करते हैं, उसके प्राप्ति-विलम्ब में करुण रस का आविर्भाव और महात्मा गांधी ऐसों में शान्ति का। कहना अनावश्यक है कि स्वराज्यावस्था में शान्ति रस नहीं वरन् शृङ्गार का प्रादुर्भाव होगा।

पौराणिक कथा में परिवर्तन

कथा में परिवर्तन करना सिद्धान्त के विरुद्ध है, किन्तु निम्न स्थलों में अत्यन्त सामान्य परिवर्तन करना आवश्यक समझ पड़ा क्योंकि उससे किसी प्रकार की कोई विशेष आपत्ति नहीं उत्पन्न होती।

१—पुराण में तो राजा विशाल का करन्धम के द्वारा पराजित होना वर्णित है, इस काव्य में विना युद्ध के सन्धि करा दी गई है।

२—'भामिनि' जो काव्य की नायिका है, वन में तपस्या से ऊबकर आत्महत्या करने को उद्यत होती है; उस समय देवदूत प्रगट होकर उसे वारित करते हैं। इस काव्य में एक भगवद्‌भक्त यही कार्य करते हैं, क्योंकि यह विशेष स्वाभाविक और लोकोचित प्रतीत हुआ।

३—मरुत्त के संवर्त मुनि की खोज की कथा, भागवत से लेकर इसमें रोचकता के परिवर्धनार्थ सम्मिलित कर दी गई।

कृतज्ञता प्रकाशन

"कहहुँ कितो, कैसे करहुँ, प्रिय "रसाल" करतूत।
भाषा में शुचिता भरी, रुचिता करी अकूत॥
भावनि माँहि सुबोधता, सुठिता दई उमाहि।
बड़े भाव अरु चावसों, करि श्रम श्रमहि सराहि॥
अति कृतज्ञ हौं रावरो, प्रियवर सुकवि 'रसाल'।
होहिं मनोरथ सफल तव, बाढ़ै सुजस विसाल॥

श्रीमान् हरिकेशव घोष, अध्यक्ष इंडियन प्रेस, प्रयाग का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने २४ घण्टे के भीतर काव्य को प्रकाशन योग्य समझकर सुचारु रूप से प्रकाशित किया। उनकी गुण-ग्राहकता के अर्थ अनेक धन्यवाद है।

छपने में कदाचित् कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। अनर्थकारिणी अशुद्धियाँ तो शुद्धि-पत्र में दे दी गई हैं शेष के लिये हम भी यही कहते हैं—"सो सुधार सब बुधजन ले हीं।

४७ जार्जटाउन, प्रयाग

साहित्य-रसज्ञप्रसादाभिलाषी
नर्मदेश्वर

अनुक्रमणिका

विषय | पृष्ठ

उत्तरार्ध

सुरसिक - चित्त - चितेरे चञ्चल
भये कृपा सों कवि तेरे।
रस रञ्जित कविता वर व्यञ्जित
करि चीन्हे पाठक चेरे॥
व्याध निरक्षर वाल्मीकि को
करि कविता-सर को गाता।
सुरसिक मन बधे अनेक पै
राम शमक विष को दाता॥
राम-रसायन मय रामायन
श्री अनुरक्ति भक्तिकारी।
राम नाम लहि तुलसी कविता
करी अतुल सी नवन्यारी॥
कामिनि-कविता कालिदास को
कान्त आपनो है मान्यो।
भाव विभूषित भारवि को वा
शिर चूडामणि है पै मान्यो॥
दण्डी, भास, मयूर, माघ कवि
को आभूषन करि धार्यो।
कोमल कान्त-पदावलि - कोकिल
जयजयदेव कियो प्यारो॥
सूर सूर होतो है देख्यो
कृष्णकेलि कल कुञ्जन में।
अमिय भक्ति सिंगार विभूसित
सरसै रस हिय पुञ्जन में॥
आवौ देवि शारदे! आवौ
आवौ कविता की रानी।
धारि कपास श्वत सम उज्ज्वल
बुद्धि सात्त्विकी नुति दानी॥
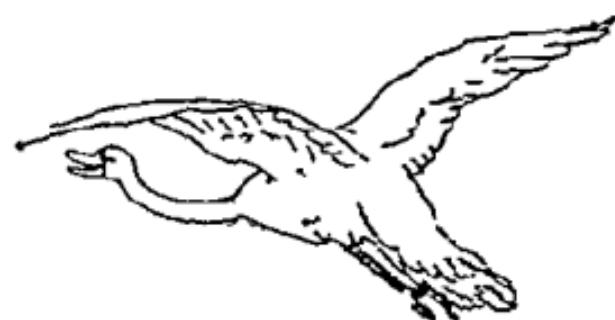
वक्रोक्ती - मकराकृति - लटकनि
नवरस-रतनन को धारे।
भाव-व्यञ्जना-ध्वनि-अंजन सों
लोचन सोभित रतनारे ॥
मोहे अनुप्रास - नूपुर-धुनि
यमक किंकिनी क्वन ल्यावै।
लय-लालित्य लहे वीना सुर
पद रसिकन कोमल भावै ॥
सञ्चारी-रस प्रतिबिम्बित हैं
उद्दीपन अरु व्यभिचारी।
सरसौ कविता महिं छवि अपनो
ह्वै रसज्ञ जन आभारी ॥
होय अनोखी परम अनूठी
निरस विरस मैं रस ल्यावै।
आलोचक ह्वै लुब्ध मधुप सम
रस पराग परिमल पावैं ॥

स्तुति समाप्त

प्रथम सर्ग

कथा-उद्गम ।

सरसी छन्द

गाथा भूतपूर्व भारत की
जाने कौन सुजान ।
सौ द्वै सौ बरसन जो बीती
लोक करत अनुमान ॥
मोहन-जी-दाड़ो को टूटे
फूटे मट्टी पात्र ।
सहस पाँच सभ्यता बतावत
पुरातत्त्व के ज्ञान ॥
अकस मकस करि मानत सबही
भारत परम पुरान ।
रहन सहन बूढे भारत को
पैहौं कहाँ बखान ॥
घहै बूढ को बूढ बुढ़न को
बाचा है इतिहास ।
अष्टादश पुरान आर्यन को
जिनमें उन विश्वास ॥
साभिमान सों मोंछ ऐंठतो
करतो बडो बखान ।

हमरे पूर्वज बड़े आत्मवित
योगी अरु बलवान ॥
रच्यो पतञ्जलि योगशास्त्र सम
न कोउ योग विधान।
सुजन में षट् शास्त्र बनायो
नहिं कोऊ जग आन ॥
सुधा सरिस वेदान्त कियो किन
भव रुज नासन हार।
ज्ञानोदधि मथि को प्रगटायो
गीता ज्ञानागार ॥
आदि काल में आदि पुरुष सों
बिलग भयो यह जीव।
मानव मन आत्मोन्मुख ह्वै कै
कीनी खोज अतीव ॥
यन्त्र मंत्र अरु तंत्र शास्त्र रचि
करी प्रकृति स्वाधीन।
महाशक्ति मै भक्ति लाइ मे
शक्ति प्रयोग प्रवीन ॥
अभिमन्त्रित नाराच निकर खर
बिसरत व्योम महान।
मनहु पवन-भक्षक तक्षक कुल
हरत विपक्षक प्रान ॥
बह्निबान पावस मारुत सर
विरचे विविध विधान।
मंत्रन जंत्रन सों सचालित
कीन्हे व्योम विमान ॥
विसमय हू मैं विसमय लावत
विसमय बान बिधान।

यथा तथा करि कथित कथानक
नित नव लगत पुरान ॥
भारत को इतिहास सोइ है
वर्णित आरज ज्ञान।
सदाचार व्यवहार संस्कृति
शासन युक्त विधान॥
यशन को ही बड़ी प्रतिष्ठा
श्रद्धार्थी राजान।
देश रह्यो सुरा संपति सागर
प्रजा रह्यो धनवान॥
कैसे रहे प्रजापालक वै
बालक वृद्ध युवान।
चरित अवीक्षित मैं कीनो मुनि
सुनु मृकण्डु बखान॥
सखा सनु सेवक स्वामी सब
रहत समान समान।
चरित अवीक्षित मैं कीनो मुनि
सुनु मृकण्डु बखान॥
पिता भक्त सत्य प्रतिपालक
त्याग मूर्त्ति मतिमान।
रसिक ! अवीक्षित चरित सुनो सो
सुन मृकण्डु कृत गान।

वैदिश वैभव

रोला

सुबरन सरिता तीर सवर्णामिन्वन्तर महँ।
थाप्यो देव विशाल नगर वैदिश उत्तर कहँ॥

गोपुर

गोपुर नगर महान कला तक्षण को अद्भुत।
चित्रित चित्र विचित्र भीतिहर भीतिन सजुत॥
रूरे कलित कँगूरे मञ्जुल मूरति धारे।
नव रस के नव भाव चाव सो जनु तनु धारे॥
मूषक चढ़े गनेस अतुल तुन्दुल गन नायक।
वज्र लये वहि शुण्ड कहत जनु हे जग-पायक॥
कमल रमा को चिह्न धारि नासौ सब विघ्नन।
कृपापात्र उनको बनि सेवौ सब सुख धन जन॥
गरुड लये अहि तुण्ड ध्वजा ऊपर जनु भागत।
विष्णु सहारो पाय शत्रु-रुद्र लखि भागत॥
शान्त अपर्णा रचित उतै शिव मे दीने मन।
ह्वै प्रमत्त शिव चले बराती अति अद्भुत गन॥
लँगडो लूलो अन्ध विकर्ण अकर्णहु कानो।
ऐंचोतानो वक्र विरूप महान् उतानो॥
चली बरात अपस्या, अति कौशल सों चित्रित।
कथा पुरान अनेक देखि दर्शक जन विस्मित॥
करत शयन दरवेष शेष शय्या करि कोमल।
सुरत नेह मैं न्हान चञ्चला निश्चल प्रतिपल॥
कहुँ मधु कैटभ असुर भयानक अति विकृतानन।
जल निधि निधि हित मथित, इन्दु निकसत फेनिल तन॥

नाचत गावत असुर, मोहनी मोहन मोहत ।
छार मार कहु होत तिलोचन लोचन जोहत ॥
स्याम सलोनो सुस्मित स्नेह सनी ब्रज नारिन ।
सकुचित माखन लेत लुटातो अपनो साथिन ॥
लगन लगाये मगन ध्यान धरि कहूँ ध्रुव बालक ।
नयन नयन नहिं खुलत जदपि ठाढ़े जग पालक ॥
पावन पुरान भाखत, चित्रन मिस जनु गोपुर ।
नास्तिकता विनासि के, आस्तिकता ल्यावत उर ॥

⚜

स्फटिक सिला को भार सार गोपुर विच राजे ।
छुद्र घटिका मनहु हिडिम्बा को मल भ्राजै ॥
सहस दीप दीपित निसि मैं मनु वृश्चिक तारो ।
जाम्बवती-ईला को मनौ स्यमन्तक प्यारो ॥
चित्र कला मैं चोखो लगत अनोखो पुर अति ।
दूर दूर सो देखन दरसक आवत दिन प्रति ॥
ठाढ़ पहरुये रहत सदा कर सर धनु ताने ।
अयन वस्त्र धरि सस्त्र नस्त कारि अरुरुन थाने ॥

वैदिश विहँगावलि

है तटनी तट बनो प्रमद उपवन मन भावन ।
सरसी कुञ्ज निकुञ्ज विराजत बन अति पावन ॥
सुषमा सो ह्वै मुग्ध उतै विहँगावलि आवै ।
कूजन करत कलोल ललित कल गीत सुनावै ॥
नित प्रति बाजी बदत विपंची उतगायन मैं ।
बानी मण्डित सुक पण्डित सुक बादायन मैं ॥
दहियर की गिटगिरी, तरानो तुठि श्यामा को ।
रुचिर राग चुलबुल बुलबुल रसधामा को ॥

करै नकल बहु करै नकल मैना स्मयकारी।
केकी ठेका देत नचत केका बलिहारी॥
ठक ठक करि कर-ताल देत मानहुँ कठफोरे।
राजहंस तहँ लसत हिये हुलसत रसबोरे॥
रचत गीत मण्डली नचत नित नव उमङ्ग करि।
गावत सविधि विहङ्ग विविध रस रङ्ग अङ्ग भरि॥

वैदिश पद्माकर

सरसी स्वच्छ सलिल मैं सरसिज सोहत सुन्दर।
सोचति पदमा आइ धरे पद हम केहि ऊपर॥
सूधे तिरछे उठत चक्र-गति चलत पुहारे।
चढि तहँ रङ्गी मीन मुरत टकराइ विचारे॥
चमकि चपल चपला-चल रेखा-गणित दिखावति।
केलि करन कामिनि को यहि मिस सीख सिखावति॥
हँसत सलिल महँ धँसत मीन हित लघु बालक सब।
गहत जतन करि लहत, न सो सटकत कर सों तब॥
जलज जाल मैं कबहुँक, किंकिन धुनि सुनि आतुर।
भजि भजि मञ्जुल मृनाल महि सकरी छाजत उर।
कबहुँक ऊपरि उछरि मीन जल-प्रियतम चूमत।
नहिं देखत इन काल पखण्डी बक उत ढूँढत॥

वैदिश पुष्पाराम

षट् ऋतु के कल कुसुम मनोहर मञ्जु मही के।
राजत वहि आराम, विमोहनहार जु ही के॥
क्यारी कल कमनीय सरद मधु बरसा के हित।
सहज सिंगारन हेतु बनी सरसा सुरसा तित॥
स्वागत हेतु क्वार के, फूलै फूल फबीले।
गुलमेंहदी अलबेली, बेले बहु सुरभीले॥
रजनीगंधा सेत पताका, शान्ति जनावति।
कृष्ण कटैया नील वसन क्यारिन पहिनावति॥

गुलदाउदी जमाति जुरत उपमा यहि आवत।
विविध राग रचिपाग ठढी सेना वामनवत॥
गुल गुलाब कातिक महँ, गन्धी सम हैं गमकत।
मुख पिचकारिन खैंचति मधु मधुमाखी ठमकत॥
लखि तिनकी अनरीति, अली आवत भनकारत।
उनको वै वारन करि होवैं परिचुम्बन रत॥
पारिजात परिमलपुरि पूजन पुष्प चढ़ावत।
कुन्द कामिनी भरे चगेरिन नजर दिखावत॥
अमिलतास को पीतवसन लहि रितुपति आवत।
किंसुक अरपत मुकुट माल चम्पक पहिनावत॥
अमराई आराम सुवासित करि ऋतुपति हित।
मधुवाला लोनी मधुप्याला ले आवत तित॥
रजक निवाडी सेत वसन वासित लै आवत।
नलिन नील लै पुरइन पत्र बधाई धावत॥
ऐसो वैदिश बाग बनो है उत मनभावन।
राजाकुल आवत जहँ अपने मन बहलावन॥

वैदिश नगर

जैसो विरच्यो विसद बाग राजा क्रीडन हित।
वैसोई हित प्रजा बनायो है पत्तन तित॥
को निधनी को धनी, कठिन जानिबो जनैबो।
सबके ऊँचे सौंध कठिन जिनिबौ लखि पैबो॥
कहुँ जौहरी मुहाल निहाल कहूँ जड़ियन कौ।
कहुँ सराफा साफ बजाजा कहुँ बनियन कौ॥
नगर बीच चहुँ दिस नगीच है चौक मनोहर।
हाट बाट चहुँ ओर दिखावै अपनो जौहर॥
एक रूप की अति अनूप जहँ विविध दुकानैं।
जिनकी सुखमा समा अनुपमा कौन बखानै॥

नहिं कहुँ कोऊ ऊँच न कोऊ नीच लखावै।
घर घर मंगल होत कहूँ नहिं कोउ बिलखावै॥
कैसो होत अकाल काल कहँ कैसो आवत।
दारिद दुख है कहा न सुख एकहू बतावत॥
अन्न वस्त्र सामग्री नागरिकन उपयोगी।
सो सब उपजै बनै बड़े परजा उद्योगी॥
करत सबै निज कर्म धर्म सब निज निज पालैं।
सदा सत्य व्यवहार झूठ की चलैं न चालैं॥
सुत सम पालत प्रजा प्रजापति प्रतिभाशाली।
या रति चाहि सराहि प्रजा निज नित्त निहाली॥

राजप्रासाद

कौन सकै कहि नृपति निकेतन की छवि खासी।
अट्टालिका अनेक अमल गिरिराज सिखा सी॥
वातायन हैं बहुल सहस लोचन लौं लखियत।
चिलमन चित्रित लगे रेशमी झालर झूलत॥
हरि रँग शयनागार कमल रँग भोजनशाला।
गौर प्रसाधन-भवन नील अवगाहन-शाला॥
हरित सिला की सरसी सुठि सोपान स्फटिक हैं।
जलक्रीडन अवगाहन इत्र-गंध वासित हैं॥
सुधा धवल प्रासाद पुंज पूरित पुर सोहैं।
को कवि कोविद कहँ जोहि जे ही पुर मोहैं॥
रतन जटित सिंहासन छत्र-सभा बिच राजत।
पूर्वज पुरुखन सुचित्र भित्तिन कौ साजत॥
रानिन को रनिवास सुघर आँगन सुख सज्जित।
द्वार जवनिका मोतिन की लखि सचि गृह लज्जित॥
भित्तिन पै आलेख कथानक लेख पुरातन।
चहुँ दिसि निसि मैं जगत जगमगत रतन दीप गन॥

पाहन निरमित सुदृढ़ सुमञ्जागार विराजै।
आयस फाटक लगे जिन्है खोलत गज लाजै॥
धनुष बाण बहु परसु पट्टिशन हैं बहुतायत।
भिन्दिपाल करवाल परिघ मुशलादिक आयत॥
कवच कठिन तूणीर तुपक तेगा बहु तोपै।
दण्ड दुसह पवि सूल गदा मुदगर रन रोपै॥
प्रहरी पहरो देत उतै चारो प्रहरन मैं।
कठिन कवच तूनीर कसे धनुबान करन मैं॥
याके सनमुख बन्यो अखारो मल्ल करन हित।
करत विविध व्यायाम वीर जहँ मल्ल करत नित॥
दहिनो बाँयो विमद सैनिका वास बने हैं।
हय गज खर गो वृषभ उष्ट्र शालादि घने हैं॥
मोछ्र ऐंठतो रहत दुअरहा गावत वीरन—
गाथा लै सब ढोल बजावत डफ मंजीरन॥
चामत चारौं जून जलेबी दूध मलाई।
खुरमा चुरमा मौरी भुरता चना मिठाई॥
परम सुपोषित मानित राजा सौं सैनिकबल।
भेद न भाँपत कहूँ कोउ काँपत बैरी दल॥

❦

इक ही सुता विशाल देव कर नाभा भामिनि।
शोभा सरस रसाला स्नेह तात की स्वामिनि॥
माता गयो सिधारि रही जब नन्हीं लल्ली।
लाली पाली पिता प्रेम रस की वह वल्ली॥
विधु सम कला विकास बरस षोडस बीत्यो जब।
सोलह कला कलाकर, काम ललन कामिनि अब॥
ब्याह जोग अब भई लाडिली राजकुमारी।
ताके सदृस कुमार मिलै चिन्ता चित भारी॥

• उनमन चिंतित नृपति परिषदन बोलि पठायो।
सुता विवाहन हेतु मन्त्र करिबे ठहरायो॥
सब कर तब मति एक, दीन्ह सम्मति यों नृपवर।
विधि विधान लखि विधि विधान लखि करहु स्वयंवर॥
करि यह नृप स्वीकार पुरोहित पूज्य बुलायौ।
सुभ दिन तिथि सुमूहूर्त स्वयंवर हित ठहरायौ॥
राज पुरोहित वृद्ध मुलै पंजिका पुरानी।
सुता कुंडली देखि लेखि ज्योतिष विज्ञानी॥
परम योग्य वर होय कुँअरि सम्पन्न स्वयंबर।
माघ शुक्र शनिवार होय जौ वहि शुभ तिथि पर॥

पद्धरी छंद

तब चलें दूत सब दिसिन चार।
साडिन बाजी गज पै सवार॥
जेहि ओर जहाँ जब जहाँ जात।
तहँ करत स्वयम्बर बात ख्यात॥
वैदिस के हैं जो नृपति राज।
निज सुता स्वयम्बर सजत साज॥
है माघ सुदी तिथि पूर्ण चंद।
है रच्यो स्वयम्बर वार मंद॥
सब चलो कृपा करि नृप कुमार।
वैदिस भूपति विनती विचार॥
नृप दूत जाइ सब देस देस।
वैदिस नृप को दीन्हो सँदेस॥

प्रथम सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

स्वयंवर समारोह

हरिगीतिका छन्द

लहरति अनन्द तरँग चहुँ दिसि नगर नागरिकान मैं।
प्रति गृह पताका पुञ्ज फहरत पवन की लहरान मैं॥
गोपुर सजो प्रतिहार तोरन, बिबिध रंग बितान मैं।
वैदिस नगर है जिमि बनायो ऐन्द्रजालिक ध्यान मैं॥

रोला छन्द

बन्दनवार रसाल पत्र पुहुपन के सोहैं।
बस्तुनि आगार बिबिध बिधि बनि जन मन मोहैं॥
राज-मार्ग है स्वच्छ प्रशस्त सुवासित सिंचित।
मलिन धाम कहुँ ठाम न दीसत कोऊ किंचित॥
मरमर मूरति रुचिर राज-पुरुषन सौं सोभित।
रचना कला निहारि, हारि बिधि हू है लोभित॥
नेह निमंत्रित नृपन हेतु है इती तयारी।
बन उपवन बिच बसो नगर नूतन जनु भारी॥
बसन हेतु बहु बिसद बसन के सदन बने हैं।
सब्र सुवास से सने बितानहु घने तने हैं॥
हय-गज शाला बिबिध एक माला में सोहैं।
रथशाला सारथी नृत्य शाला मन मोहैं॥

चर्व्य चोष्य पुनि पेय लेह्य बहु भाँतिक व्यंजन।
चारि रसज्ञ भारि सकै करि नहिं अभिव्यंजन॥
जिन मिसाल सुविसाल बनो मंडप सुमनोहर।
लाल पीत रेशमी वस्त्र आवृत चोबन पर॥
मोट गोट जगमगत जरी को सुठि साजन सौं।
काशगरी मखमली सुपरदे दरवाजन सौं॥
वैकय के कालीन कीमती फरस बिछो हैं।
आसन गंगा जमुनी को ऊँचो अति सोहैं॥
मसनद हैं मखमली छबीली छवि छिति छाजे।
कलाबतू के कामदार कौसल कृत राजे॥
चौदस पूरब पुरुष चित्र सुविचित्र मनोहर।
ठौर ठौर पै लसत सुमंडप करत हृदय हर॥
मणि-मंडित दीपन सो मंडप चहुँ दिसि चमकत।
मनौ त्रिसंकु अनेक व्योम महि हैं तित लटकत॥
सुता स्वयम्बर काज राजमंडप सुठि सज्जित।
जाके होत समक्ष मखपति सभा विलज्जित॥
चहुँ दिसि कै प्राकार नगर सेना परिक्रमित।
पीत वसन उपणीष माथ धनु हाथ सरान्वित॥
मोहक सुषमा! चहुँ दिसि अमिलतास फूले जनु।
या कछार मैं गहगहाय फूल्यौ सरसौ मनु॥
सजि साँडिनी सवार दमामा जात बजावत।
अगुआनी मैं अरुन-सिखा-कुल-उष्ट्र लजावत॥
सहनाई धुनि मधुर करत स्वागत पहुनाई।
देस देस के राज कुमारन की अगुआई॥
रजत साज झनकावत बाजी ऐंड़त मग मैं।
ऐंठत सजे सवार मनौ तिन सम नहिं जग मैं॥
गंगा जमुनी कढ़ी अमारी भारी गज तन।
छत्र चँवर कर सजे कलँगि पटुका तुर्रासन॥

खासदान अरु पानदान लै खासदार सब।
चँवर डुलावत ठाढ़े पाछे राजा साहब॥
साज वसंती दंती राजत चैदिस राजा।
रत्नजटित सिर मुकुट, दिपत तन तेज विराजा॥
उर उल्लसित हसित मुख, अलि इव इत उत भरमत।
युवा वृद्ध अरु बाल मगन मन मग विच विरमत॥
ठौर ठौर पै नगर-पाल ठाढे हैं सज्जित।
उमडत जन सन्दोह निवारन अति उत्साहित॥
जयजय ध्वनि है करत जबहिं नरपति ढिग आवत।
निज नरेस पै सुमन रासि प्रमुदित बरसावत॥
हरषित भूप विशाल देख यह देखि सपर्या।
आशिष लेत प्रणाम करत उनकी परिचर्या॥
देव स्तुति मंदिर वेद ध्वनि यज्ञालय मैं।
शान्ति स्वस्त्ययन पाठ सुनिय विद्यालय मैं॥
अग बंग कालिंग मगध कोसल उत्कल के।
मन्दक कुन्तल सूरसेन नृप नृप मेकल के॥
गुनगन शालिनि वैशालिनि सुठि सुकुमारी के।
पावन की अभिलाख पानि पल्लव प्यारी के॥
देस देस में मलय मरुत लौं गुन विस्तारे।
मनहु कलाधर की सकला सुकला तनु धारे॥
सुनि गुनि चले अविचित सुत सम्राट करन्धम॥
वेनजीर वर वीर केसरी कुँअर अरिंदम॥
धी सुर गुरु सम कान्ति सोम सम तेज सूर्य सम।
पिता भक्ति अनुरक्ति सक्ति मैं जनु पुरुषोत्तम॥

पूर्व पुरुष परिचय

कमल योनि ब्रह्मा के आदि पुरुष मनु पूर्वज ।
मनु के सुत नाभाग जाहि इक्ष्वाकु अग्रज ॥
सात्विक सुत नाभाग भनन्दन भो जग पालक ।
वत्स प्रिय उनको सुत, वीर बली अरि घालक ॥
वासव अरी कुजिम्भ, दैत को विजित कियो जिनि ।
याकी सुता सुनन्दा ब्याही सुन्दर कामिनि ॥
तिनको सुत भो प्रांशु वृत्तीवर मखी धार्मिक ।
सुत इन ज्येष्ठ खनित्र शीलनिधि नवनिधि मार्मिक ॥
वक्ता शास्त्र विशारद जगहित मैं वह नितरत ।
अरि हू कौ हित चहत रहत जो जित योगी यत ॥
'क्षुप' इनको सुत, जा सुत वीर सुजस जग पायो ।
इनको सुत 'विंश', जो 'खनीनेत्र' सुत जायो ॥
होवै इन्द्र प्रसन्न अतः गोमति तट पै रमि ।
'खनीनेत्र' तप कियो, श्रेष्ठ सुत हित नित जिमि ॥
ह्वै प्रसन्न वासव उनके मन को वर दीनो ।
इन्द्र कृपा सों जन्म जगत दीपक सुत लीनो ॥
दीन्हो नाम 'वलाश्व' पुरोहित हिय सों तिनको ।
आराध्या अम्बा जगदम्बा नित प्रति जिनको ॥
वैरिन घेरी एक समय मिलि कोशल नगरी ।
भो वलाश्व लखि खिन्न छिन्न सेना निज सिगरी ॥
लागे विनवन दीन आर्त ह्वै जगदम्बा को ।
दुःख दलन मैं एक सहारो तोर दया को ॥
रोदन तें कर धमन भयो गन विकट काल सम ।
निकसे करतं तवसों नृप को नाम करन्धम ॥

परम भक्त नृप ऐसो जायो कुँअर अवीक्षित।
गयो स्वयंवर मैं जो उद्भट सेना परिवृत ॥

पद्धरी

वह भयो दुन्दभी शख नाद।
राजा आवत जे पूज्य पाद ॥
उनको आवन कै सुनि संदेस।
स्वागत करिव्यो वैदिश नरेस ॥
साडिनि निकरी सब झलझनात।
बाजी नाचत सब छमछमात ॥
रथ चले वहाँ तै घरघरात।
हाथिन हलका हू घनघनात ॥
निकसे गोपुर स्वागतन काज।
राजा विशाल सजि साज बाज ॥
जयकार करत सब जन समूह।
सब चले सघन लै बाधि व्यूह ॥

अतिवरवै

अंग देस सों आवत, नरपति अँगराज।
विरद देव बँगदेशी, को बँगला साज ॥
मुरजराज लहि सिर पै, मागध को छाज।
मुकुट सिंह मन्दक को, है नीको ताज ॥
सोमराज कुन्तल को, कछु कुंचित केस।
उत्पातवर्म उत्कल, को उत्पल वेस ॥
मेचककुमार मेकल, को मचकत ठाट।
सूर सेन सों आवत, हैं सूर विराट ॥

कुँअर अविदित आयो, कोशल सजि साज।
चपल चौकड़ी चचल, चढ़ि ब्याहन व्याज॥
आवत लखि राजन के, श्रीदेव विशाल।
अर्घ्य पाद्य विधिवत लै, निकिसो भूपाल॥
पाठ कियो स्वस्त्ययन विशारदी लोग।
अर्चन आरति कीनो, अति सुभ सजोग॥
सुमन हार पहिरायो, उन सविधि विधान।
हरसिंगार कुन्दीयुत, गुलाब पुहपान॥

सोरठा

परिचय मत्रिन दीन, आमत्रित सब नृपन को।
अनुनय राजा कीन, आतिथेय स्वीकार हित॥
सहित सुहृद सम्मान, पहुँचायो स्वागत भवन।
करि सब सुख सामान, कियो नियत सेवक उचित॥

दूसरा सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग

भामिनी स्वयम्वर

माघ का प्रात काल

रुचिरा छन्द

अरुण-सारथी अम्बर ऊपर,
खेलत आजु मनौ होरी।
स्वामि-सूर्य सों छिप कर भोरहि,
पीन पयोधर सों खोरी॥
भागत है तजि अम्बर अपनी,
विनय करत है कर जोरी।
सगी-अनिल दौरि धरि लावत,
अरुण करत पुनि बरजोरी॥
लखि प्रातहि अन्याई लीला,
उडगन उत लुके लजाई।
देन दुहाई लगे विहग गन,
देखहु यह दास ढिठाई॥
साक्षी कियो भुजगी इनकी
कहि 'ठाकुर जी' अकुलाई।
सामा दहियर पक्षी गन सब,
उन अरुण अनीति बताई॥
सहस रश्मि निकसो प्राची मैं,
अरुण दियो उन अरुणाई।

लज्जित भये देखि साहस को,
सारथि की यह ढीठाई ॥
निरखि दिनेस दसा यह चहुँ दिसि,
निविड नीहारिका छाई ।
नीति चाल हिम को लखि खग गन,
गे मन में अति सकुचाई ॥
तूरी तूर्य शिखी को बोली,
स्वामि करौ सब पहुनाई ।
सकुचाई हिम त्रासित पदमिनि,
लजि पाटल पटल उठाई ॥
बचे खुचे मकराकृत कुंडल,
सुमन अगस्त मनौ लाये ।
*श्वेत जपा निरखत विश्वेश्वर,
अरुण पुष्प मिस हरसाये ॥
गुंफित गुलाब स्वागत में शुभ,
मीना बाजार सजाये ।
अंशुमालि को किरिन परसि हिम,
जनु आनंद नीर बहाये ॥
हिमकन पुष्प पटल पै राजत,
जनु अभ्रक रज बरसाये ।
जगमग शोभा निरखत पूषन,
प्रेम प्रभा चहुँ फैलाये ॥

---

*श्वेत जापा—यह गुल अजायब के नाम से प्रसिद्ध है । इसके पुष्प सूर्य की किरण से गुलाबी रंग के हो जाते हैं ।

स्वयम्वर दर्शक जन

माघ पूर्णिमा तथा स्वयवर,
भामिनि राजकुमारी को।
धर्म काम साधन को अवसर,
आयो है अतही नीको॥
आपस में ह्वै रही ततकही,
स्नान ध्यान करि के आओ।
सदावर्त है बँटत वैदिशी,
भोजन जहँ विधिवत पाओ॥
खाय पीव करि चलौ सभा नहि,
मडप पेठ सुलभ ह्वै है।
"अरी अनारिन कहत कहा तू,
चलु सुविधा कितनी लै है॥
मडप सुठि सोपान चहूँ ना,
जिमि तरनी तट पै होवैं।
लाख लाख जन हेतु सुआसन,
धैर्य कछू मत तू खोवै॥"
रूप दिखावन हित युवती इक,
कछु विहँसत ठिठकत भाखै।
"मडल,क मडली निकट मन,
बैठिवो हियो अभिलाखै॥
देस देस के राजकुमारन,
कहँ हमहूँ देखन जावै।
राजकुमारी काहि वरे है,
अतुलित श्री यह को पावै॥"

"बरन बरन नहिं देखन चाहति,
देखन चाहति अम्मारी।
जापै राजा मेरौ निसकत,
दसमी मैं करि असवारी॥"

सरिता मैं सब स्नान कियो तब,
करते इत उत की बातैं।
भोजनशाला को भागे सब,
चाद्रुकार व्यंजन घातैं॥

बैठे बिसद वितान तले तब,
जिमि बाभन पंत्ती बाँधे।
पेडा बरफी सोहन हलुआ,
घेवर जामन सब साधे॥

पूरी पापर खस्ता मठरी,
टिकिया अरु दही फुलौरी।
आलू अरुई गोभी पालक,
परवर की सोंध पतौरी॥

जभीरी अँचार कमरख गन्ना,
अमिली सिरका पोसी।
किसमिस दाख छोहारा अदरख,
की चटनी चटपटि चोखी॥

खाय अघाय तृप्त ह्वै जै जै,
करत चले सब नरनारी।
बैठे जाय स्वयंवर मण्डप,
सोभा जासु हृदय-हारी॥

नृप विशाल मंडप मैं राजत,
भेंट प्रजा प्रिय सों लेवें।

आगत-नृप स्वागत हित उनकी,
राह चाह सों वह 'जोवैं ॥
रही गावती सामान्या वहँ,
मन हेतु प्रमोद प्रजा के।
निश्चल मुग्ध रहे स्रोता सब,
सुनि सुस्वर गायन जाके ॥

राग धनाश्री

मंगल मंगल होवे राजन। टेक।
मंगल मूर्ति मुदिर ह्वै बरसै, मंगल बुन्द सुधासन।
मंगल होय सुमंगल उत्सव, होय अमंगल नासन।
मंगलायतन मंगल दाता, होवै मंगल कारन।
मंगल करैं असुभ ग्रह हू सब, होवै विघ्न विदारन ॥

दोहा

महारास जिमि ह्वै रहो नृत्य गान अभिराम।
लास्य मूर्च्छना गमक को, व्याख्या परम ललाम ॥
बड़े बड़े संगीतवित, बैठे तोरत तान।
मुख बिगारि सिर धुनत जनु, कटु औसधि जिमि पान ॥
साधारन जन सुनत इन, जनु बालक अज्ञान।
मार पेंच जाने बिना, करते तबौ बखान ॥
पै प्रशस्त संगीत वा, जो मोहै अनजान।
मुरकी, लय, सुर तालयुत, सीधे साधे तान ॥
यहि प्रकार की गीत अब, मोहक मन हिय कान।
होन लगी वा सभा मैं, बचे सबनि के प्रान ॥

छोट बडे सब एक रस पीवत नाहि अघात ।
ध्यान कान दे सुनत सब भूलि अचल मन गात ॥
तडित तडक बादर कडक, निद्रा यथा पयान ।
त्यों धुनि सुनि बहु सरस की, सब कौ उचट्यो ध्यान ॥
शंख ध्वनि अरु वाद्य-रव, सग आवत अवनीस ।
लख्यौ सबनि औचक चकित, इत आवत जनु श्रीस ॥

तोमर छंद

जय अग राज सुअग ।
जय विरद देव सुनग ॥
जय मगध राजा राज ।
जय मुकुट जू सरताज ॥
जय सोम कुन्तल राज ।
जय धरनि उत्कल छाज ॥
जय जयति मेकल राज ।
भारत सुदेश सुलाज ॥
जय सूर सेन सुवीर ।
जय महा कोशल धीर ॥

दोहा

करत जय ध्वनि बन्दि जन, आगे आये भूप ।
मडप मैं परियत लये, मडित परम अनूप ॥
नरपति देव विशाल तब सबको करि सम्मान ।
बैठायो सबको सविधि, यथायोग्य अस्थान ॥
वैदिस के बदी विरद आगत स्वागत कीन ।
आमंत्रित भूपतिन कौ क्रम क्रम परिचय दीन ॥

चारण स्तुति

रूप घनाक्षरी

अधिपति 'अगराज' अग देस अग राग
कोसल कुमार 'अनिचित' अद्वितीय वीर।
अग्नि के उल्का 'उतपाल वर्म' उत्कल के
मौलिमणि मुकुट 'मुकुट सिंह' महावीर॥
मानी, महामहिम मागध के 'मुरज राज'
मेकल के 'मेचक कुमार' राजतन्त्र मीर
'सोम राज' कुन्तल के पालक प्रसिद्ध सिद्ध
धीर धरनी के 'शौर वीर' धरनी के हीर॥

गाइये कहाँ लो गुन गरिमा सुमहिमा की
शेष हौ ना सहस वदन सों जौ करौ गान।
एक तन तेरो पे अनेक गुन कैसे धरो
एक मुख मेरो कहा करि सकतो बखान।
ब्रह्मा के प्रपौत्र व्यास जाहिर जहान जोन
पचि पचिहारे रचि रुचिर किते पुरान।
आनन के चार चतुरानन चतुर कहै
सकल कला ले कलाकर आयो है जहान॥

जाड़ अति माघी मैं सुहात ओढि बैठवोई
प्रात ना जगात हैं निहारिका को धरो घोर।
पानी को परस कहा दरस कँपावै देह
मेह सो नहात हूँ दसन हे करत सोर।
चद चंदिका सी मद है प्रभा प्रभाकर की
कर की हू आँगुरी ठिठुरि राखती न जोर।

धारे प्रेम बैदिस पधारे मास ऐसो आप
पलक के पाँवरे जो डारै तबहू तौ थोर।

दोहा

विरुदावलि बदी विरत तब नर्तन सह गान।
मृगपति है नर पति भये मोहित मृगन समान ॥

राग पीलू

स्वागत स्वागत हे सब भूपति।
जगजगात मडप मडित है, तुम सों हे नर अधिपति।
मनहु मुदित हैं यश किये तैं, आये छिति सुर सुरपति ॥
कहत और याही कहि आवै, अवनि उतरि उड उडपति।
बैदिस धन्य! अनेकन तन धरि, प्रगटे जहँ कमलापति ॥

सोरठा

मनमोहक सगीत, होत वद सब उचकिगे।
आनँद भयो अतीत, मगल मुरिज निरखन लगे ॥

मनहरण घनाक्षरी

हाथन सों साहन के मुद्रा नीर पाहन से
खुलत दगचल अचल मैं मरिगो।
रासि रुपया की पाइ जिन्दा से सजिन्दा भये
मचन सों कचन के ढेर ढारि ढरिगे।
रसिक रटैं हैं धन्य धन्य रूप या है धन्य
हारि हिय नैसुक निहारि नेन तरिगे।
बाजन पै केते सजि बाजन पै केते वलि
केते सब राजन के मुक्ता हार भरिगे ॥

दोहा

राजा तब आयसु दई राज पुरोहित जाइ।
सुभद स्वयंवर हित इतै पुत्री ल्यावहु ल्याई॥
तबला पुनि ठनकन लग्यो छिर्‌यो सरंगी तान।
भई कुरंगी सम सभा लुलुभे लोचन कान॥
कोऊ नहिं बोलत रहो नहीं ऊँघतो कोउ।
सांसी खिसकी सबनि तैं नैन बिके जनु दोउ॥
प्रति तोड़ा पै तोड़ती मानव हृदय कपाट।
लास्य विलासन मैं लसे भूले सब घर बाट॥
ठगे रहे से नयन सब लगे रहे लय कान।
रँगे रहे रस रीति रँग पगे रहे प्रति प्रान॥
जनु मोहन मोहन कियो किंवा नारद बीन।
जानो सब जोगी भये भव चिन्ता सों छीन॥
आतुरही तुरही सुनै कंबु सुधुनि सुनि कान।
आवत राज कुमारिका गये नृपति सब जान॥

घनाक्षरी

मंडप मैं औरही बिराजी सभा सुखमा की
पूर्णिमा की है रही अबाई लै दुचंद चंद।
न्यारे ढँग न्यारे रँग, न्यारे साज सग भये
दग भये देखि रंग भूमि नृप वृंद वृंद।
विकसी कली सी अली निकसी सदीप थाल
लीन्हे जयमाल राज कन्याकाहू मंद मंद।
गावति सहेली संग आवत उमंग भरी
रंग भरी चाल सौं लजावति गयंद नंद॥

मनहर घनाक्षरी

घूँघट के पट मैं बदन की बिभाती बिभा
विभाकर बिंब प्रति बिंब मनौ घन मैं।
रूप रुचिराई माधुरी हू मैं लुनाई लसी
आई उरवसी उरवसी सी भुवन मैं।
विकसे सरोज से उरोज यौं कि भवभीति
छल रूप ओज लै मनोज बैठे तन मैं।
लाज की यवनिका सी मानसी मथनिकासी
यौवन छलनिका सी छलै छैनु छन मैं॥

हरिगीतिका

सुस्वप्न की सुषमा सरीसी,
कल्पतरु की कल्पना।
कमनीय कवि कल भावना,
भाषा भरण सुविजल्पना॥
ऋतुराज की मनसिज प्रियासी,
सुरत की अभ्यर्थना।
स्वारस्य की सी अरुण छवि,
मंजुल मनोज सुदर्शना॥
कमनीय कन्या आस की,
सुविकास बेला की कली।
मृदु हास्य लास्य प्रकाम सुषमा,
कंचुकी मानौ भली॥
वक्रोक्ति वक्र विलोलनी रति,
सुरति की सुषमानना।

है चिबुक काम डिठौन माया,
पाश कुन्तल कुल घना ॥

दोहा

बंधन सों भय करत सब, बन्धन भामिनि हाथ।
जयमाला तबहूँ चहत, बँधन हेतु तेहि साथ ॥

कुंडलिया

पकहि बंधि है सबनि मैं, बिधे सबनि को नैन।
जो बेधे विधु बदनिको, हिय को करि बेचैन ॥
हिय को करि बेचैन, पहिरि जयमाला गिर मैं।
बाला सरस रसाला, लहि कमला को कर मैं ॥
लगे मनावन पावन, हित भूपति सब जे कहि।
ईस देहु यहि पकहि, पकहि है जग पकहि।

सोरठा

क्रम सो सब बरनन रहै, बन्दीजन सों नृप कह्यो।
को कैसो नृप कुंअर है, युवरानी समझै सबै ॥

रोला

त्योंही उल्का पात भयो अति भीषण दिन मैं।
रवि प्रकाश परि गयौ निपट नीलो इक छिन मैं ॥
सोचति सभा सकाइ कि प्रलयागम नियरायो।
चकित लखै नभ नैन बैन मुख सो नहि आयो ॥
तज्यो न कोऊ स्थान, सभ्य राजा अरु मुनिजन।
संस्कृति अहो! समाज विगत सुस्थित भारतियन ॥

सखिन साथ जयमाल हाथ कन्यका चली पुनि ।
विकल विलोकति धरनि करनि विधि की यह हिय गुनि ॥
चलो ग्रोलनें वन्दी, दूत दौरि इक आयो ।
बोल्यौ, कहने रन्छ पाल, यह वृत्त पठायो ॥
रक्त पुंड ह्वै गयो गिरो उल्का है जिमि थल ।
उफनत तक्र समान रक्त अति भभकत बलबल ॥
आतंकित सकित समाज सुनि बात असुभ यहि ।
वै अनसुनी सुनी सब बैठे रहे मौन गहि ॥
असमजस में सभा कहा है है आगे अब ।
का करि हैं नृप भई न होनी हू होनी जब ॥
परिचय क्रम आरम्भ कियो वन्दी ने पुनरपि ।
पाय राज सकेत हृदय करि स्वस्थ सुकथमपि ॥
"प्रथम विराजत अगराज है देश अग के ।
रिपुन पराजि रिपु भये मानि लोहा दबग के ॥
अगराज प्रति अग अनगहु देखि सिहावै ।
विद्या कौशल धैर्य चहूँ दिसि सुजस सुनावै ॥"
कन्या इगित पाय, पाय चारण बोल्यो तब ।
"कोशल राजकुमार शात कौशल उत्तम सब ॥
पढे वेद वेदाग कराव-सुत सौं इन सारे ।
अस्त्र शस्त्र कौशल सीखे किमि जगत सँभारे ॥
द्वन्द युद्ध म व्याघ्र कियो इनकौ क्षत-विक्षत ।"
सुनत कुमारी चली नृपतिगन इतर विलोकत ॥

विजया घनाक्षरी

तमकि के अवीक्षित तड़पि के सिंह सम
निकसि के गह्वर सों यथा मदय पकरत ।

पकरि कै चल्यौ हाय भामिनि को सभा बीच
"हरण हैं करते हे राजा। सबै निरखत।
करने को प्रतिरोध श्रद्धा तब गहो शर
चुभते चुकीले शर बरसा ही जलवत।
पर देह क्यों दुखाना करो दासी परिजन
लौटि घर आओ अब तुम लाओ क्यों विपत॥

चौपाई

उन्नत कन्धर चलो सभा तें।
दर्प मूर्ति सम सिंह वहाँ तें॥
चलो अचिन्तित राजन देखत।
मूर्ति बनी सम नरपति लेखत॥
मनौ मन से रुद्ध रहे सब।
हरण रोध में नहिं कीने तब॥
दुग्गित विशाल देव बोले तब।
जाओ प्रजा मनोहत घर अब॥
चले विचार-भवन नरपति सब।
निर्धारण करने अब बरतब॥

तीसरा सर्ग समाप्त

चतुर्थ सर्ग

कूट नीति

अभिमानी मति मद असभ्यान्यायी अर्भक।
बर्बर बालिश विकृत विधर्मा पातक गर्भक॥

हम सब बैठे महारथिन पर नद करन्धम।
किया असह अदम्य दम्य अपकर्म नराधम।

क्षमा आर्य जन धार्य किन्तु उसकी मर्यादा।
क्षम्य नहीं जो अनाचार सीमा से ज्यादा॥

दडनीय दमनीय आततायी होता खल ।
उसे न करना नष्ट भ्रष्ट श्रुति पथ से है छल॥

कहे धर्म 'उत्पात वर्म' ने भूपों से जब।
'शौर वीर' नृप तान तिरीछी भौहैं निज तब॥

बोले, मर्दित मान किये मैं बिना न जाऊँ॥
सरिता पलटे धार न रण से पीठ दिखाऊँ॥

बाणों की वेदना अविच्छित ने न सही है।
सुनी समर में धनुष-ज्या टंकार नहीं है॥

देख दीठ दे पीठ करन्धम सुत यह कायर।
जायेगा य' भाग प्रभजन से ज्यों बादर॥

गया ऐंठता दुर्दुरुट वृक सा यह ऐसे।
इस अबला को लूट अयाचित पामर जैसे॥

जो अब भी मद चूर्ण नहीं होयेगा इसका।
मंडलीक मडली नीति निष्फल हो सबका॥

सोमराज ने कह्यो वचन श्रर नीति विमडित ।
दो दिन का छोकरा कहेगा शक्ति श्रखडित ॥
स्वेच्छाचारी निडर बडा, की निज मनमानी ।
होगा क्या फल सोचा न पापी मदमानी ॥

मुकुट सिंह ने कह्यो, न इसके हम वसवर्ती ॥
सहें मूकवत अनाचार क्यों बन अनुवर्ता ॥
उठो वीरवर चलो बजाओ अब रण डका ।
जीत इसे, कन्यका छीन लो, करो न शका ॥

विरद देव तजि रोस शान्त बोले यह वानी ।
कन्या-हरण प्रथा चली आ रही पुरानी ॥
किया अविचित ने वह ही, पर कुँअर योग्य है ।
सुन्दर जोडी जुडी तोड़ना अब अयोग्य है ॥

इस उत्सव को व्यर्थ रक्त रजित क्यों करते ।
अगराज ने कहा, पसडी हो तुम जँचते ॥
द्विट-सोची हो तुम, किया अनर्थ है कितना ।
गूढ नीति में मूढ न जानो हमको इतना ॥

हरण वरण अन्याय न, कन्या है जब सहमत ।
देखे अत्याचार बैठना है कादरवत्त ॥
हरण रुक्मिणी हुआ प्रेम से निज अनुमति से ।
उचित कहें मतिमान उसे निज निज सुचिमति से ॥

दुर्योधन, लकेश, यवन सम यह अकर्म है ।
धिक ! तुम क्षत्रिय कुल कलक धिक ! क्षात्र धर्म है ॥
नृप विशाल यह देख क्रोध है बढता जाता ।
कहे, अहिंसाप्रिय, हिंसा हमको न भाता ॥

किन्तु कहा जा तज प्रपच सन पच सभा ने।
वह सिर माथ धरूँ ठीक दृढ ह्वो मन ठाने॥
न्यियो एक मत सबै अविक्षित को सिरु दीजै॥
शौर वीर सों कह्यो आप नायक पद लीजै॥

बाने सरस असरस चले सज निज निज सेना।
लेना जय है वीर पराजय रिपु को देना॥
भयो धनुप टकोर गगनभेदी भयकारी।
हय गज रोही रथी पियादन करी तयारी॥
कवच कठिन कसि वीर अस्त्र सस्त्रादिक साजे।
गाये मारू गोत जुझाऊ बाजा बाजे॥
खुली म्यान सों खड्ग लपालप लपकी ऐसे।
भुज भुंजग से उतरि रही सित केचुंल जैसे॥
महातुमुल सो भयो जय ध्वनि की ध्वनि रहि रहि।
पत्ति बाँधि के चले पदाती बोलत जहि जहि॥
कोलाहल मुनि पर्यो अविक्षित के कानन में।
निकस्यो सिंह समान गहे कर कार्मुक छन में॥
करत प्रतिक्षा रहे अविक्षित यह अवसर की।
संज्जित स्यन्दन साथ हाथ धनु बान समर की॥
चमकि चढ्यो रथ जाइ सारथी रथ कों हाँक्यो।
लोहित चक्र मयक प्रात जिमि भ्राजत बाँको॥
'शौर वीर' मो भुरो अकेलो तजि दल पाछे।
बान चलायो चारि बिना कछु पूछे-ताछे॥
'शौर वीर' की ध्वजा कटी बाजी भे आहत।
रहत खेतते तहाँ जहाँ जे जैसे आवत॥
बान व्यथित हय भजे लिये रथ पलटि पछौ हैं।
चढि गज पे 'उत्पात धर्म' तब आये सौहैं॥

आयो लीन्हें सत्ति मनी रावण सुत आयो।
रन दुर्मद गज गरजि अविक्षित रथ पै धायो॥
ह्वै समच्छ ले लच्छ शक्ति भर शक्ति चलाई।
बचे अवीक्षित लचे सारथी हिय सों आई॥
आहत लखि सारथी अवीक्षित सर इक मार्यो।
रिपु भुज तासें वेधि बान पुनि अपर पॅवार्यो॥
सनसनाय सो बान लगो गज के चरन कोरें।
भाग्यो करि चिग्घाड वैस हू मुरत न मोरे॥
कठिन कवच कसि 'सोमराज' कर असि चमकावत।
वाजी वल्गित चढे अवीक्षित देख्यो आवत॥
वानन को आवरन बनायो अत ही दुस्तर।
सोमराज को अश्व मनो रोक्यो बाजीगर॥
'मुरजराज' तहॅं तुरत समस्या लखि यह आये।
बाणावरण निपाटि पुरत शर बहु बरसाये॥
बडो धनुर्धर धीर मुरजराजा मेचक के।
दोउ परस्पर तीर घात में नहिं कछु हिचके॥
कहुॅं इनको छत घात रुधिर कहुॅं उनको निकसत।
दोउन के रथ भग्न भग्न मदिर सम लखियत॥
नृपति अवीक्षित रथ-ध्वजा उनसों यों भाखत।
फटे फटे हम फटे करौ वैरी को आहत॥
देखि ध्वजा-रिपु चहौं गरुड पच्छी ह्वै जाऊॅं।
नोचि नोचि चिथरे चिथरे करि दड दिखाऊॅं॥
मारौ प्रभु! दृढ नॉंह ताकि सर जो कर छूटैं।
पीठ दिखावैं सनु आपु यश अक्षय लूटैं॥
शतावधानी रहे अविक्षित मनो सुनो वह।
ताकि चलायो सर अचूक सों लग्यो हाथ मॅंह॥

छूट्यो कर सों मुरजराज के घनु वाही छन।
बटुक सिंह चा कह्यो करो सेना सचालन॥
उत राजा सब भगे अविच्छित नृप देख्यो जब।
आपु गयो निज धाम कह्यो वह सेनानी तब॥
करो अबै ध्वसन तुम सेना बैरिन आवत।
क्षत-विक्षत तन कवच सहित छिन चैनहु पावत॥

सोरठा

जुरे सबै भूपाल, राज मन्त्रणा हेतु तब।
है अद्भुत यह बाल, किंकर्त्तव्य विमूढ सब॥
कियो सबनि हिय नाश, न्याय धर्म सब द्वेषनै।
अब तो जय की आस, पथ अधर्म के ग्रहन ते॥
सब जन एकहि बार, घेरि चहूँ घातें लरे।
करिवो धर्म विचार, विजितन को नहिं चाहिए॥
उत्पात धर्म उपदेस, सब अवनीपति ग्रहन के।
जुरि सब चले नरेस, घेरि चहूँधा तें लियो॥
शख ध्वनि पुनि कान परी अवीक्षित के तबैं।
देखि नृपन चकरान, कूट चाल सब समुझि मन॥

कृपाण घनाक्षरी

नभ मैं उड़े निसान, भेरी अरु पटवान
घेरि चहुँवै दिसान, आये कुटिल नृपान।
नीच सबै नीति जान, धारि हिये गुरू ध्यान
अविच्छित है रिसान, राजत रथ महान॥
गरजि कह्यो यों आन, करो धर्म का बखान
देखो समर श्मशान, करो स्वाहा सब प्रान।

कहैगा जहान मेरा वीरन की आन बान
एक ओर वीर प्रान, दूजे कायर जुटान ॥

कोशल के हैं कुमार, मानै न कदापि हार
देय यम ललकार, घालै तन भी कृपान ।
कायर हो मूर जार, धर्म का नहीं विचार
होय हाथ चार चार, आये हमें एक जान।
इतिहास का लिखार, युद्ध वृत्त समाचार
अविक्षित असीधार, मर्दक महीप मान ।
चेतो हे! करत वार, हार होय बार बार
सँभलो मृदु कुमार, चलत है तीक्ष्ण बान ॥

भयो युद्ध घमासान, लाखन पतौरे बान
चक्र लै धनुष तान, अविक्षित अप्रमान,
छोड्यो वे चहु दिसान, काटि काटि कै ध्वजान
यान भे बिना निसान, मर्दित भे शत्रु मान ।
आवत कुटिल जान, घेरत विधर्मियान
हायन पै धरे मान, अवीक्षित वीर प्रान ।
लरत है साभिमान, मानौ अभिमन्यु आन
घायल भयो महान, भई देह लोतवान ॥

बरवै

सुन्यो शब्द नारी को आवत जोर।
देख्यो घुमरि अवीक्षित वाही ओर ॥
केश ध्वजा लौं फहरत धनुसर हाथ।
चक्र चंद्र सम बेंदी सोहति माथ ॥

आवत रही वेग सों अद्भुत बाल।
तुरग तेज कौ ऐंड़त कर करवाल॥
ध्यान अवीक्षित दीन्यो नारी ओर।
उत्पात वर्म मार्‌यो त्यों शर जोर॥
मूर्छित भयो अविक्षित वाही ठौर।
बन्दी कियो अचेतन राजा दौर॥
रथ पै डारि अविक्षित सब मुसुकात।
महल चले सब राजा हिय हरखात॥
बटुक सिंह सेनापति पठ्यो जाव।
तुरत कुमारी भामिनि रथ में लाव॥
महा अनर्थ देखि कै वीरा बाल।
लौटायो बाजी को वा वहि काल॥

चौथा सर्ग समाप्त।

पचवाँ सर्ग

प्रेमांकुर

चन्द्र छन्द

कौन रही जल्दी, मेरे नाथ।
झलक एक ही में, भई सनाथ॥

भाग्य को सराहत, रही दासी।
है हौं सीता सी, पद उपासी॥

इतनोइ कौतुक रह्यो मन मैं।
कौन कौन आयो, अधिपतिन मैं॥

ब्याहनै आप कै, भामिनी को।
स्वयवर आजु कै, स्वामिनी को॥

एक ही झलक लै, उन सबनि की।
डारतो जयमाल, सुठि सुमनि की॥

लयो झलक आपु, मम हरन को।
जो हुलासी रही, तब बरन को॥

काहे नाथ हाय, देख्यो नाहि।
नैनन भरो नेह, चाहत जाहि॥

जाको चरनन मैं, हिय अंक मैं।
रहन चाहती हौं अशक मैं॥

आपु हौ धनुर्धर अमिश मैन।
जान्यौ ना नारी, मुकथनि सैन॥

जानतो तो कहा, करतो हरन।
सुखी हो तो आपु, को करि वरन॥
लतिका लज्जा है, नारी जाति।
मनमथ रसना तें, न कही जाति॥

मन रह्यो ना, गयो आपुहि साथ।
सिंदूर दूजा ना, राखौं माथ॥
विजित सम गयो हौ, कारागार।
जगत कहैगो गे तुम ही हार॥

अनयन जग बारे, हैं विधर्मी।
न्याय नहि अन्याय, करि कुकर्मी॥
तबहू कहावैं हैं यह सुकर्मी।
पिता जी कहैंगे, ये सुधर्मी॥

हे विभाकर भानु! हे मरीचिन!
देखौ अनीति है, लोक साक्षिन॥
किरिन सों विदीरन, करो पापिन।
जारौ राजन को हरे! स्वामिन॥

ये भारत कलंक, कायर क्रूर।
नराधम निष्ठुरन, पातक पूर॥
भस्म करि उतारौ, पृथ्वी भार।
विनवत हौ मानौ, विनय पुकार॥

हा! हैं अबला की, आहैं अबल।
आप हू सुनत हो, केवल सबल॥
कहौना! छिपे का, जाय घन मैं।
विनय अनसुनी की इच्छा मन मैं॥

जारौ जारौ हे! जारि डारौ॥
छारौ छारौ हे! छारि डारौ॥

सबै भची रलि इन कुटिलन को।
अनीति होय मरम सब खलन को॥

सुनि हो विनय ? मानु ! कहौना ? हे !
निकसौ धन पट सों देर काहे॥

दयानिधि मरु भये, आतु कैसे।
अबला बचिहै भला, लाज कैसे॥

पुरुष हो भगवान, जान्यो आज।
राखो न तबै तो, नारी लाज॥

पिता बैरी साथ, बरनो चहैं।
माता गई हाय, न कोउ अहैं॥

माता ! माता !! तो, जगत माता।
जगमाता ना हा गो विमाता॥

ठुकरावेगी नहि, निज सुता को।
आश्रय लेहौं अब सुमाता को॥

कहूँगी खोलि हिय, अपनो हाल।
मैटि है जो विपत, अंकित भाल॥

सोरठा

खडी तुरत उठ के भई, लै पूजा सामान सब।
चडी मदिर मैं गई, सब सखियन को साथ लै॥

चंडी मंदिर

रोला

सुन्दर अति आराम बीच ताके इक मदिर।
स्फटिक शिला सो वाहि बनायो पटु कारीगिर॥
उपल गलन ते हीन मनौ निर्मित देवालय।
मरकत मनि कौ, बन्द कँगूरे सब मानिकमय॥
शिखर विराजत चन्द्र कान्ति मणि नित जो चावत।
मदिर को बहु विधि मरीचिमाली जब पावत॥
अरुण काल मैं महा पद्म सम है छवि छाजत।
पाय दिवाकर तेज हेममय निर्मित भ्राजत॥
तिमिर निशा मै मनौ स्वरूप सत्व लहि पत्थर।
प्रगटो शान्ति प्रचार हेतु उतपाती निश्चर॥
सुन्दर मदिर मैं इमि मोहनि मूर्त्ति बिराजत।
सुस्मित आनन देखत जनके दुख सब भाजत॥
खल दल जाते ग्रसित सिंह वाहन सोइ गरजत।
स्वामिनि आयसु चौकि, दव्य जो नयतति तरजत॥
संख लहत कर करत घोषना जनु प्रानिन को।
करि हौं तुरत सहाय सरन आगत दुखियन को॥
राजत कर मैं कमल जाहि मिस कमला भाखत।
सरनागत सब लहै सिद्धि निधि जोइ अभिलाखत॥
चक्र करत आदेश गगन के तारा गन को।
नित निज नियमित करौ काज तुम व्योम भ्रमन को॥

हाथ कमडल मनौ अन्नपूर्णा को भाजन।
दरि दुरा दारिद हरे, भक्त जन नित्त निवाजन ॥
शक्ति देति है शक्ति अनन्यागत सुर गन कौ।
खड करति है खड्ग दुराचारी दुर्जन कौ ॥
नाशत नैन तृतीय भक्त के त्रिविध ताप सब।
जननि न काटे क्लेश कहाँ आरत ऐसो कब ॥

हरिगीतिका

है मोहनी माया मनोहर,
मजु महि महिमामयी।
है जात चन्द्र चकोर जिमि तजि
चखन चचल चतुरयी ॥
विश्राम पावत क्लान्त मन,
मृदु मूर्त्ति पेखि सुधामयी।
दर्शन सुदर्शन चक्र है दुर
दलन दुख दारिद छयी ॥

मानौ जगत माता माया मैं,
चली देखन भुवन को।
मद मत्त देख्यौ मोह मैं नर
नारि कामी जनन को।
आचरज सों अधमी गई अति
देखि भूले सुवन को।
वा रह गई निज धाम तजि के,
भुवत इनको करन को॥

रोला

अति उद्विग्न अशान्त भामिनी पहुँची जब यहँ।
सविधि समन्त्र सुपुण्य होत पूजन सुठि विधि तहँ॥
"चड विनासिनि दुर्गा प्रनमौ जगदाधारिनि।
नमो नमो विश्वेश्वरि विश्वा विश्व विधायिनि॥
नम शक्तिदानी जगधात्री वैरि विनासिन।
भक्त उधारि विजय जय कारनि वर वर दायिनि॥
विद्या माहा माया नमो नमो त्रयनेत्री।
त्रिपुर सुन्दरी नमो नमो महिमा जग नेत्री॥
मन्त्रेश्वरि श्री नमो कामदे जय शर्वाणी।
जय जगदम्बे शिवे शारदे जय ब्रह्माणी॥
अशरण शरण सहाय भक्ति निज करती विधिवत।
कर्म विपाक सुपाक करौ जननी जन विनवत॥"

कुण्डलिया

यावत नीराजन रहे गये सबै जन वृन्द।
भामिनि मंदिर मैं खरी विनती करत अमन्द॥
विनती करत अमन्द, लोक माता सों आरत॥
तनया जननी हीन, जनक वैरिन सो व्याहत॥
अकथ कहानी कहत प्रणय की कथा सुनावत।
नन्दी जाके चरन दुख नन्दी वह पावत॥

कुण्डल छद

हौं सहाय हीन दीन मरन मैं तिहारी।
विषम विपति घेरि मातु दुखी हौं विचारी॥

अमातु की तु मातु हौ, सुता तव दुखारी।
गहौ बेगि आई मातु, डूबत मझधारी॥
बन्दी हैं प्राणनाथ पिता शत्रु भारी।
करन चहैं ब्याह मोर कुटिल नीति धारी॥
और सों न करौं ब्याह मन मैं प्रन ठानी।
ब्याह करौं कबहुँ नाहि कायर अभिमानी॥
मन मैं हैं बरन कियो कोशल सुत को ही।
औरन सो त्रान देहु भजौं नाथ को ही॥
हारे सब एक एक कूट नीति धारी।
युगपति सब युद्ध कियो न्याय को बिसारी॥
मैं सहाय दौरि परी पहुँचि नाहि पाई।
बन्दी मम प्राननाथ, हौं अनाथ माई॥
एक बार दान दै न फेरि दीन्ह जाई।
एकहि मन दीन्ह उन्हैं दूजो कहँ पाई॥
जेते नर तृन समान देखहुँ तौ दोखी।
आत्मघात करन पाप राखौ निर्दोखी॥
और है न सरन कोउ सरन चरन आई।
तजि हौ मैं प्रान अबै जौ न कृपा पाई॥
बिनती या करत रही असुग्रन थल बोरी।
कण्ठ रुद्ध मृतप्राय गिरी धरनि छोरी॥
सखि जन सब है ससक करत ब्यजन धोरी।
चरनामृत देन लगीं गावत धुनि लोरी॥

मनहर घनाक्षरी

बाजि उठे घंटा संख एकै बार औचक ही
औचक पुजारी भये मंदिर के खौं सबै॥

गमकि सुरभि गई मानो देव कानन की
कलिका उनींदी खुलि खिली मुछटा छवै ॥
मोहगता भामिनि सुवास सों सचेत भई
देखी देवि ठाढ़ी दीठि भीतर दई जवै ।
बोली है मुदित भयो उदित सुभाग, अम्ब,
दै दयावलम्ब रोखौ अम्ब होहुगी तवै ॥

दोहा

करि प्रनाम देविहिं तहाँ प्रमुदित राजकुमारि ।
चली अली सँग लै भली महल ओर सुकुमारि ॥

पचवाँ सर्ग समाप्त

छठवाँ सर्ग

उन्मत्त-अवीक्षित

छन्द आनन्दवर्धक

दुर्वृत्त ही वृत्त है ससार का।
सुवृत्त मार्ग ढोंग है अपमान का॥
धर्म! धर्म!! धर्म!!! देखो पुस्तक मे
सिक्का अधर्म चलता है जगत में॥
भूपति सुधमा श्रेष्ठ हैं नाम में।
चरित अन्यायी दिखाते देश में॥
धरते वेष आचारो विशेष सा।
धर्म आदेश सब रटे हैं शुक सा॥
आचार किन्तु पामर पातकी सा।
चाणक्य कृत्य जॅचते सात्विकी सा॥
अनीति कर्म में अनीति विचार में।
अनीति वृत्ति में और व्यापार में॥
पिता ने व्यर्थ गुरु सेवा कराई।
व्यर्थ हुई स्मृतियों की सब पढाई॥
नियम रण के बने हैं ये वृथा ही।
न मोहित भागते का हनन का ही॥
मारो मत अशस्त्र आतुर विरथ को।
नियमों ने बन्दी कराया मुझको॥

धर्म युद्ध कर बन्दी कौन करता।
शरों से नीच शिर धरणितल गिरता ॥
जग धारनेवाला धर्म है वहाँ ?
ताल पत्र में वचन लिखे जहाँ ॥

बल होता जगद्वारण का उसमें।
अवीक्षित बन्दी न होता रण में ॥
क्या बन्दीगृह में है धर्म रहता।
अपराधी जिसमें है दंड सहता ॥

जग सुख का तब तो मंत्र अधर्म है।
धर्म ही अधर्म है अधर्म ही कर्म है ॥
पिता जी ! यज्ञों का, हाय ! फल यही।
पुत्र को कुगति देने का ही सही ॥

व्यर्थ हुआ पुत्राभिमान आपका।
व्यर्थ हुआ अध्ययन अस्त्र-शास्त्र का ॥
"दैवो धावति पंचमः" में तथ्यता।
नहीं तो क्यों युद्ध में विघ्न पड़ता ॥

न आती वह नारी हन्त ! रण समय।
अभिमन्यु सा सुकीर्त्ति पाते अक्षय ॥
न होती अपकीर्त्ति और न यह अयश।
न होते हम दुष्ट पामरों के वश ॥

किन्तु नारि ! नारि ! नारि !! पामरी कृति।
किस मनुष्य की नहीं हरली है धृति ॥
स्मृति बुद्धि बल यश सब है नाशिनी।
क्या विधि न अन्य थी जन प्रसविनी ॥

क्या क्या क्लेश पाता मनुष्य इससे।
इतिहास और पुराण भरे जिससे ॥

महा बली बालि नाश हुआ किससे ?
है लका-पति-विनाश हुआ किससे ॥
कराया उपहास नारद का किसने ?
कराया दक्ष यश नाश किसने ?
घुमाया बन बन शकर को किसने ?
राजहत कराया भीष्म को किसने ?
नारी ने नारी ने नारि ही ने ।
भेजा हमको बन्दीगृह जिसी ने ॥
धिक ! धिक् ! पैशाची जाति नारी पर ।
प्रतारण करती रूप मोहनी धर ॥
जप तप भ्रष्ट किया विश्वामित्र का ।
उपहास योग्य कर्म है ययाति का ॥
स्वरूप अश्लील ले बैठे सुर पति ।
पुरुरवा की केसी कराई चति ॥
योग तप नाशक सब नारी जन हैं ।
नारी से ही रक्षित इन्द्रासन है ॥
किन्तु माता मेरी भी है नारी ।
'वीरा' नारी नारियों में न्यारी ॥
सुनते अधर्म नीति से हम बन्दी ।
नृप गणों ने किया समर-छल-छन्दी ॥
प्रतिहिंसा की अगाध प्रबल धारा ।
शीलका तो तोड देगी किनारा ॥
सुत-अपहृत-केसरणी मनो क्रोधित ।
दडघात से भुजगी सी क्षोभित ॥
रक्त नेत्र महा दुर्गा सी सायुध ।
निकलेगी कालाग्निवत् करने युद्ध ॥

वीरा की वीर गाथा जग जानै।
धनुर्धरी धीर योधा सब मानै ॥
बीता समय गुरू सेवा में थे जब।
गई पिता साथ अहेर में वह तब ॥
पहुँचे निविड़ दोनों जंगल में जब।
हस्ती पर चढ़े पदाती छूटे सब ॥
सिंह घोर झड़पि झाड़ी से गरजत।
तड़पि महावत को किया घसीट हत ॥
अचूक शूल वीरा ने हरि मारा।
पिता क्रुद हरि को मारा हत्यारा ॥
सुनेगी बन्दी है जब मेरा सुत।
भभकेगी क्रोधाग्नि पाय घी आहुत ॥

रथारूढ शस्युत सुसज्ज चलेगी।
एकाकी रिपु दमन काज बढ़ैगी ॥
पर रण-अधर्म नहीं तुम सीखी हो।
लड़ नीचों से मत आप बन्दी हो ॥
वीरा माता साहस तुम न करना।
भावी थी अवीक्षित बन्दी रहना ॥
सिंह समान यह रातिब खायेगा।
भ्रम से यदि यह कभी छूट जायेगा ॥
ध्वंसन मारुती सा करके सबका।
उन्नति कीर्ति सुयश करे कोशल का ॥
हमारा अस्त्र हाय ! तो छीन लिया।
हमको धनुष 'ताण्डव' से हीन किया ॥
होगा पड़ा निरादृत धनुष खाण्डव।
होगा जोहता यह प्रत्यंचा रव ॥

धनुष पड़ा बिचारो आयुद्ध गृह मैं ।
चिन्तन करतो क्यों है थल निष्प्रभ मैं ॥
नहि पुष्प माल है मो पे न चन्दन ।
तैलाभ्यंग नहीं औ न मम मर्दन ॥
मेरो मित्र कहाँ आजु स्वामी है ।
कहतो जो कार्मुक रण कामी है ॥
वथा प्रेमासक्त परे उस नारी मैं ।
भूलि गयो मोहिं बाकी बारी मैं ॥
याहि दास मारुती लौं तुम जानौ ।
छाड़ि सकैं नारि नर को यहि मानो ॥
सकैं छाडि तब पिता मित्र सुबान्धव ।
पै न अन्वा कबहुँक यह साथी तब ॥
परित्याग सों प्रेम न मम टूटैगो ।
सेवा धर्म हमारो न छूटैगो ॥
पटुता मोहि कर स्वामी मैं आवै ।
नहीं मूक परो रहिबो मन भावे ॥
पै फरकि रह्यो प्रतिहिंसा हिय मैं ।
लहि दवागि वास तरकै जिमि बन मैं ॥
हा ! हतक ! नारि न आती जौ रन मैं ।
पलट्यौ जाते रन पट को छन मैं ॥
चहूँ ओर सों घिरे रहे प्रभु तबहूँ ।
वीर टरै न कायर अरि से कबहूँ ॥
सपदि खाण्डव धनु खंडन रिपु करतो ।
सपदि विजय माल तब गर मैं परतो ॥

× × × ×

यन्दि रक्षक ने बन्दीगृह खोलो।
तुरत चौंकि अविदित बातै बोलो॥
"स्वयंवर अंत हुआ क्या भामिनि का?
स्वामी हुआ कौन राज स्वामिनि का॥"
"स्थगित हुआ देव! कार्य सब इस क्षण।
निज निज देश जाते हैं सब नृपगण॥"
उपकरण-प्रात प्रस्तुत के बाने।
कियो कपाट बन्द तुरत रक्षक ने॥

तोषित भयो कुँअर बड़ो ही मन मैं।
है नहिं अब पाप भामिनि चिन्तन मैं॥
नाचति रही भामिनि छवि नैनन मैं।
मनो हुती ठढ़ी प्रेयसि वा छन मैं॥
"बहको न मन हो जाओ उत्पल से।
हार गया अविदित वैरी छल से॥
हारे की साथी न होती नारी।
जगती होती जेता की आभारी॥
त्रुटि न मान मन इसको ललना की।
मन में मनन करो मूर्त्ति सपना की॥
तनिक वीक्षण उसका हुआ सुवीक्षित।
ईश ईक्षण मह पुनीत से ईक्षित॥

विगत जन्म के सबल सुकृत ये मेरे।
लोचन मम मिले जो लोचन तेरे॥
हे लोचन! अब नहीं पलक उठा कर।
सकते हो देख उनको जीवन भर॥
स्वच्छन्द रहे प्रभु तब न हे लोचन!
होता कब विजित को सत्व विलोकन॥

रे मन ! है कहता कि रण में भामिनि।
कर धनु लिये तुरग चढ़ी हिय स्वामिनि॥
आती थी करने सहाय अरिन प्रति।
होगा उनको क्यों प्रेम इतना अति॥

प्रेमोत्पत्ति

रोला छन्द

सकता क्या हो उदय प्रेम का पलक लगाते।
प्रेम पारखी कवि काव्यों में जिसको गाते॥
गाया गीत रागमय विरची काव्य कहानी।
दुर्निवार मन-मथ की वृत्ति सरस मनमानी॥

कहते क्लेश कटंकित कंकरीले जीवन को।
सरस बनाता प्रेम विवस प्राणी के मन को॥
जग को स्थिरता देकर मोहकता है लाता।
सभी चराचर को प्रेमोपासना सिखाता॥

देखो नलिनी नेह विकल भ्रमरी का गुंजन।
अलबेली तन्मय तितली का कुसुम विचुम्बन॥
सरल मधुर स्वर मे है गाती सरस सारिका।
समझाती संगिनी गूढ़गति प्रेम धारिका॥

निज रसरता प्रिया की ममता मे मधुमाखी।
चूस स्वमुख से सुमधु प्रेम की गाती साखी॥
मति विहीन पशु-पक्षी होते प्रेम विकल जब।
विस्मय क्या नारी नर आहें भरे अगर तब॥
प्रेयसि प्रतिमा लिये हृदय में पूजन करता।
विरह व्यथा की तानें हृत्न्त्री में भरता॥

धन्य प्रेम ! तुम धन्य ! तुम्हारी कैसी लीला ।
करते नीरस रूप भक्त जो रहा रसीला ॥
राग रग से विरत अरत हो खान पान में ।
कुछ करता कहता कुछ रहता और ध्यान मे ॥

हे अविचारी प्रेम कहाँ तव कौन विधाता ।
कवि कल्पना कृपा से तव उद्‌भव के ज्ञाता ॥
मधुमास प्रात मे हुआ काम रति सम्मेलन ।
कल क्रीड़ा व्रीड़ा विहीन में अचल उलझन ॥

मृदु मुसुकाती रति ने निज दृग दिये उधर जब ।
आँख चार हो गई एक तुम हुए प्रगट तब ॥
पर जब से अभिराम काम का हुआ दहन है ।
चिधुर प्रेम में तब से आया श्वसन गहन है ॥
पौराणिक कवि कहे हुआ जब सागर मन्थन ।
कल कमनीय कल्पनासी कामिनि कमलानन ॥

निकली ले विधुकान्ति देख सुर और असुर गण ।
अंग अग पर लगे वारने निज मन प्रति क्षण ॥
मेरी मेरी कहते सब यह है बस मेरी ।
दौड़े देवादेव विनय करते बहुतेरी ॥
रूप गुणागर नागर हरि बोले यह मेरी ।
पद्‌मनाभ को देख दृष्टि पद्‌मा ने फेरी ॥

सुस्मित वदना रमा प्रियतमा विष्णु गोद में ।
बना रमापति उन्हें रम गई सुप्रमोद में ॥
इस सुयोग से जन्म प्रेम का हुआ प्रशंसित ।
मन्मथ, मार, काम, मनसिज कहते सब पंडित ॥
कातर लालायित अदेव की दृष्टि पड़ी जब ।
हुई प्रेम मे विषय विरह की व्यथा घड़ी तब ॥

विश सुकवि उत्पत्ति प्रेम की कथा बताते।
दे वर भस्मासुर जब शिव भागे पछताते ॥
असुरन्तप हरि ने सुमोहिनी का कर बानक।
हो प्रत्यक्ष समक्ष असुर के गये अचानक ॥
हुआ देखकर अति अनूप वह रूप रंगीला।
छोड़ शम्भु को उधर मुग्ध हो इधर रसीला ॥
बोला फिर सस्नेह बनो तुम मेरी रानी।
बोली तब मोहनी बात मैंने यह मानी ॥
यदि सिर पर रख हाथ साथ तुम नाचो मेरे।
यह मम रूप अनूप तभी हो अर्पित तेरे ॥
मोह मूढ़ वह गूढ़ चाल यह समझ न पाया।
हाँ! हाँ! क्या यह बड़ी बात है कह मुसकाया ॥
कर सकता हूँ पूर्ण सभी अभिलाष तुमारी।
नाच देखना इष्ट तुम्हें तो देखो प्यारी ॥
यों कहकर वह असुर मोह मद से बौराया।
ज्यों ही अपना हाथ माथ के ऊपर लाया ॥
त्यों ही जल कर भस्म हुआ शंकर के वर से।
शिव भी आहत हुए मोहनी के चख शर से ॥
जन्म प्रेम ने तभी मुग्ध शंकर से पाया।
उसमें फिर विरहाग्नि रुद्र तामस ले आया ॥

ॐ

चिन्तित कैसा यह सब, हम सब से क्या करते।
प्रेम पाश से बीर न बँधते और न डरते ॥
तब क्यों भामिनि मूर्ति हृदय में फिर फिर आती।
कहाँ कहाँ की बातें मानस पट पर लाती ॥

क्या बन गई सदा की मेरी वह स्वामिनि है।
मेरी हो सर्वस्व मुझे दुर्लभ भामिनि है ॥
हे मन निठुर गई भाग धी भी तुझ से अब।
हो सकता सत् प्रेम किसी का बिन्तितों में कब ॥

हेम-हरिणि सम आई वह मेरे जीवन म।
स्वाभिमान है मेरा हरण किया यौवन में ॥
क्या ही सुख मनन सुचिन्तन में जो उसके।
मिलता वह सुरा जो समाधि गत योगी रसके ॥

पिंजरगत शुक सदृश गीति गाऊँ मैं तेरी।
प्रेम-कथा कविता नित विरचै तब मति मेरी ॥
पर होगी निष्फल इस बन्दी की सब कविता।
पति के बिना यथैव विरस बनती है बनिता ॥

छन्द आनन्दवर्धक

कहते वैद्य विषय एक चिन्तन से।
होता है उन्माद सतत मनन से ॥
उन्माद ! उन्माद ! ओह ! आने दो।
उन्माद ! बुद्धिहीनि ! बस जाने दो ॥
उन्माद ! विभ्रम ! अच्छा ! होने दो।
उन्माद ! उन्माद ! भामिनी दे दो ॥
स्मरण-मात्र ही अब है मेरे बस।
करता वरण मनन मात्र से परवस ॥
सुखी रहो ! तुम मेरी प्रेयसि ! वरण
करो शूर धनुर्धर, मुझको स्मरण
तुम्हारा कर्णधार है जीवन का।
कर देगा पार जीवन चेतन का ॥

मन मैं यहि प्रकार अविदित गुनतो।
विधुर दशा अपनो पै सिर धुनतो॥
गयो सोय व गोद गुनत सुती की।
विधुर परम के आश्रय दातृ की॥

सोरठा

करौ कृपा हे ईश, कोशल सुत बन्दी परो।
जग के हौ जगदीश, अब सहाय कर्त्तव्य तव॥

छठवाँ सर्ग समाप्त।

सतरहवाँ सर्ग

पराक्रम

छन्द ललित

नीरव नीरव नौबत खाना,
क्रीड़ा थल रँगशाला।
स्तब्ध स्तब्ध है पण्य कार्य सब,
नहिं क्रय विक्रय वाला॥

स्तब्ध स्तब्ध जीवन जन का है,
घोर विपत्ति समायो।
नीरव नीरव नगरी ज्यों है,
महा निपातन आयो॥

निर्जन है निर्जन तट सरयू,
कोऊ नहीं नहावै।
निर्जन है निर्जन हाट बाट,
कोउ न जातो आवै॥

निर्जन है निर्जन राज बाग,
दर्शक नहीं दिखातो।
निर्जन है निर्जन कौतुक गृह,
बन्द कपाट बुझातो॥

निश्चल है निश्चल राज सदन,
रक्षक केवल ठाढो।

निश्चल है निश्चल राज मार्ग,
देखौ दिवस दहाडो ॥
निश्चल हैं निश्चल नौकायें,
जो थी आती जातीं।
निश्चल हैं निश्चल घोडे-गाडी,
यात्री नहिं हैं पातीं ॥

दूत आय सम्वाद दियो कहि,
दशा स्वयम्वर केरी।
छायो दुख कोशल में छायो,
व्यापी बिषम घनेरी ॥

प्रजा कहत राज सुरच्छक ह्वै
गयो हाय अब बन्दी।
दौरि परैंगे वैरी नृपगन,
जे जीते छल छन्दी ॥

जरा जर्जरित नृप जग जानत,
कुँअर भीति रिपु सारे।
अरि दुर्दान्त सान्त रहि बैठे,
रहे सनाका मारे ॥

सोचि रहे हैं नगर निवासी,
का करि हैं अब राजा।
कोशलराज काज ह्वै है कस,
राम राखि है लाजा ॥

वा दुर्दिन की सुरति न भूली,
जबै पुरी अरि घेरी।
रिपु दल चतुरंगिनि सेना लै,
के अति विकट घनेरी ॥

खेत रहे कोशल के योद्धा,
लूटन को दिन आये।
भये हतास महीप निपट तब,
शिवाशरन तकि धाये॥

देवि द्वार परि निराहार नृप,
अनुनय विनय सुनाई।
देवि! देहु बल रन-दलदल मैं,
रिपु दल देहुँ मिलाई॥

ह्वै तव पूत, भक्त, जगजननी,
कौन द्वार मैं जाऊँ।
सकट विकट निकट आयो जब,
तव न सहारो पाऊँ॥

अयि माये! अपनी माया की,
छाया छिति पै कीजै।
दुर्गति दुर्ग दरनि हे दुर्गे,
दया मया कर दीजै॥

सुनत विनय देवी प्रसन्न ह्वै,
दया छोटि यौं दीन्हीं।
नृपति करागुलि स्वासन हूँ सो,
प्रगटित सेना कीन्हीं॥

विकट सेन यौं प्रकट भयकर,
छन मै सत्रुन सँहारे।
नाम "करन्धम" भो बलाश्व को,
जय जस जगत पसारे॥

वयो वृद्ध अब भूप भये वे,
ग्रवधी कहा फेरे।

कारा से विमुक्त करि कैसे,
सुत को दुःख दरंगे ॥

ॐ

एतो ही में तूर्य नाद सँग,
भई घोषणा छन में।
राज सभासद सचिव गुरू मुनि,
चलिये सभा भवन में ॥
सुनत सूचना सकल सभासद,
सभा सदन में पैठे।
लहि नरेस आदेश यथोचित,
निज निज आसन वैठे ॥
प्रजा रही कौशल की उत्सुक,
घेरे चहुँ दिशि ठाढ़ी।
निज प्यारे युवराज कुशलता,
की जिज्ञासा बाढ़ी ॥
मम युवराज आज वन्दी है,
फरकत उनकी दाढ़ी।
कब राजा रण को चलिहैं अब,
हिय अभिलासा गाढ़ी ॥
शंख नाद पै ठाढ़े भये उठि,
नृप की जानि अवाई।
आइ करन्धम भूप सिंहासन,
बैठे छत्र लगाई ॥
गुनी मुनी स्वस्त्ययन पाठ करि,
शांति सिद्धि विधि कीनी।

जय जय जयतु सभासद बोले,
कुसुमांजलि मुनि दीनी ॥

सम्राट करन्धम

परम गभीर शान्त सागर सम,
तुहिनालय की शोभा।
उन्नत भाल धवल कुन्तल तैं,
शान्ति मनौं मन लोभा ॥
धर्म राज के धर्म सखा सम,
धर्म सिखावन आये।
धर्म स्वरूप स्वधर्म धुरी धर,
धर्म विधाता जाये ॥

कोशल पति अति दुखी दीन मन,
गिरा गभीर उचारी।
दुष्ट वृत्ति सुनि चुके आप सब,
करनी कहा विचारी ॥
तनय अविचित्त आज्ञाकारी,
पुरजन परिजन प्यारा।
बन्दी हो असहाय पड़ा है,
राज पाट से न्यारा ॥
किंकर्त्तव्य विचार आप सब,
करै एक मति ऐसी।
महा मान्य यह राज्य मान की,
होवे नहीं अनैसी ॥

गौतम मुनि-सुत राज पुरोहित,
बोले सुधर्म ज्ञाता।
करना बन्दी मुक्ति, धर्म है,
राज धर्म बतलाता॥
नरक-त्राता पुत्र पिता का,
पिता धर्म है होता।
कर असहाय पुत्र की रक्षा,
पिता न यश कुछ खोता॥
उठो चलो क्या हुआ वृद्ध हो,
करो सैन तैयारी।
मन्त्री वृद्ध महीधर बोले,
नय नागर सुविचारी॥

'सहसा न विदधीत च क्रियाम्',
मंत्र यही हित धारो।
करो विचार बलाबल का फिर,
पूर्वापर निरधारो॥
नहीं सभी श्रम निष्फल होगा,
सर्व प्रथम यह देखो।
कितनी सेना अभी युद्ध के,
योग्यायोग्य परेखो॥

सेनापति से पूछा नृप ने,
तब वे बोले सहमे।
क्षमा नाथ! लज्जित हम सेना--
रहस्य उद्घाटन में॥
परमित कोशल की सेना से,
'विशाल' से भिड़ जाना।

अग वग सँग देंगे तब,
सदिग्ध विनय का पाना ॥
सभा सनासन रही सभासद्
मौन गहे सब बैठे ।
परदा छाडि महारानी तब,
भृकुटी लोचन ऐठे ॥
तरजि गरजि सिंहिनि लौं बोली,
कादर हौ तुम सारे ।
'सत्यमेव जयते' कहते बुध,
नानृत छलबल वारे ॥
धीर वीर साहमी सैन्य को,
सदा विजय श्री मानै ।
बहुत बड़ी कायर सेना तो,
हार मार ही जानै ॥
बूढ सूर सेनापति मेरो,
ताको पद मैं लैहौं ।
कर करवाल हाल लै रन मैं,
रिपुदल को दरि दैहौं ॥
माँग भरे श्राहत जौ ह्वै हौं,
इन्द्र लोक मैं पैहौं ।
सुत बन्दी उत, मातु जियै इत,
यह नहिं श्रजस कमै हौं ॥
मैं हूँ चत्राणी रण जीवन,
रंगस्थल रण मेरो ।
रण भेरी धनु प्रत्यचा रव,
श्रानँद देत घनेरो ॥

रण को महा महोत्सव मानैं,
ईस कृपा सों पावैं।
दोऊ हाथ साथ मोदक है,
आयसु पावत जावैं ॥

समर सोइ सुरपुर पै जावैं,
विजय पाय यश लावैं।
कायर को घर घरनी प्यारो,
सुखघर मैं घुसि पावैं ॥

रहे पुकारत सखा सखा कहि,
रह्यो अविदित प्यारो।
सुख दुख साथी रह्यो तुम्हारो,
तुम यौं ताहि विसारो ॥

करि विश्वासघात प्रिय जन सों,
अरे नेह ! के नेमी।
जग-जननी कै है तुमको तौ,
कायर कलुषित प्रेमी ॥

पिये दूध क्षत्राणी माता,
वीर तनय हो साथे।
आओ जीवन सफल करो अब,
रुधिर लगाओ माथे ॥

मारुत तर्जनि को चीर्‌यौ वह,
याली रक्त बहायो।
दौरि परी सब युवक मंडली,
चन्दन-रुधिर लगायो ॥

"जय अवीक्षित जय जय जय,
जय बन्दी सखा छुड़ावै।
जय महराज करन्धम जय जय,
प्रभु आज्ञा जो पावै॥
हम सब साथी सखा छुड़ावैं,
चलै बानरी सेना।
टिड्डी सम शर सों भहरावैं,
टलै बानरी सेना॥
एक एक करि मारि गिरावैं,
छलै बानरी सेना।
सखा प्रेम को आज दिखावैं,
डुलै बानरी सेना॥"

"धन्य धन्य हो प्यारे बच्चे,
वीरा के हो प्यारे।
चलो चलो वैदिस सब मिलि के,
लै योधा सब सारे॥"
वीरा वीरा क्षत्राणी तुम,
कह्यो करन्धम राजा।
रक्षा करो यहाँ कोशल की,
वहाँ बजै रण बाजा॥
भीष्म पितामह सम हम लड़ कर,
काशिराज कर बन्दी।
लाऊँ अम्बा-सुता भामिनी,
हर कर उस स्वच्छन्दी॥

करे विवाह अनीच्छित उससे,
यह प्रण मन में ठाना।
कालाग्नी सम क्रोध भभकता,
धारें रण का वाना॥

चण्डी चण्डा मुण्ड विनाशिनि,
रण चण्डी अब आओ।
मारौ मारौ छारौ छारौ,
वैरिन मार गिराओ॥

जय बोलो जय रण चण्डी जय,
भक्त पुकारे तेरा।
निमित्त मात्र तो होंगे हम सब,
जय तेरा नहिं मेरा॥

गहों बीर तूनीर तीर धनु,
हरो मान अति मानी।
ज्ञानी हो रण रीति नीति सब,
विजय - श्री हो लानी॥

मानी हो जो क्षात्र वीर्य का,
मातु दुग्ध अभिमानी।
लानी हो जो तीर धनुष पर,
विजय इष्ट मनठानी॥

तानी हो शर वैरी वेधक,
शक्ति बीरता सानी।
त्यानी हो गौरव कौशल को,
रण कौशल का ज्ञानी॥

अभिमानी जो देश मरण-हित,
वीरन ज्ञात कहानी।

ध्यानी हो जो ज्ञान धर्म का,
चलें वीर विज्ञानी ॥
आश्रो यदि हों राष्ट्र हितैषी,
जो स्वदेश प्रेमी हो।
मारो रिपुगन वीर बली यदि
कृती न्याय नेमी हो ॥
मातृभूमि में भक्ति भली यदि,
आश्रो देश दुलारे।
हो अनुरक्त राज कोशल म,
आश्रो कोशल प्यारे ॥

सेनापति को आज्ञा दीनी,
करो सैन तैयारी ।
चतुरंगिनि सैना सब साजो,
कौशल शक्ति विचारी ॥
चतुर्थांश सेना कोशल हित,
समर कुशल धनु धारी।
दुर्ग मार्ग पर धरो शतघ्नी,
मेन्य-स्थान बिचारी ॥
बन्द करो सब मार्ग नगर के,
चुनि दिवार चूने के।
द्वार प्रधान खुला बस रक्खो,
हित आने जाने के ॥
उसी द्वार के दहिने बाँये,
महा शतघ्नी रक्खो।

निसि दिन जलें मशाल पलीते,
संख्या में हों लक्खो ॥
महा छली हैं वैरी मेरे,
रखना सजग सवारी।
कुशल गुप्तचर योग्य अनुभवी,
वीर धीर सुविचारी ॥
विद्वेषी राजों मे परखें,
क्या उनकी तैयारी।
सुन्दर सुमुखि बार-ललनायें,
करें कुशल ऐय्यारी ॥
नाच रंग से करें प्रलोभित,
रहें व्यस्त दिन सारे।
जिसमें दूत वैदिशी भूलें,
कार्य नियुक्त बेचारे ॥
खान पान वैदिश दूतों का,
पूरा ध्यान रखाना।
राजा के श्रायुस में जिसमें,
होय विलंब रवाना ॥
राय कुशल-रण रानी से तुम,
समय समय पर लेना।
कोशल से वैदिश नगरी तक,
लगा डाक क्रम देना ॥
समाचार नगरी का जिसमें,
नित हमको मिल जावे।
योग्य अनुभवी हो तुम करना,
जब जो उचित दिखावे ॥

राज ज्योतिषी समय बहुत कम,
अमृत घटी निरधारो।
विजय श्री ले लौटें ऐसी,
विजय मुहूर्त विचारो॥

राज ज्योतिषी पर्जा उलटी,
गणित कियो अन्दाजा।
बोल्यौ विकसित बदन कि वह वम,
वेर न कीजे राजा॥

बीत रही है विजय घटी अब,
प्रस्थान काल आया।
इष्ट सिद्धि यश वृद्धि सभी है,
छुवै न वैरी छाया॥

तुरत उठे महराज करन्धम,
बीरा तिलक लगाया।
बदी बोले जय जय नृप ने
दक्षिण पाद उठाया॥

आरति कै रानी नै बोली,
नाथ हाथ जय लाओ।
पतिव्रता नारी होऊ जौ,
अवसि जीति तुम आओ॥

लाओ मेरो वीर अविक्षित,
जो अधर्म रण नन्दी।
करो परास्त अधर्मा नृप गन,
क्षुद्र छूत छल छन्दी॥
क्षत विक्षत सुत अगनि को मैं,
प्रेम अश्रु से धोऊँ।

क्षत्राणी निज वीर अंक में,
वीर सुवन को जोऊँ ॥
आशिष दै ऋषि मुनी पुरस्कृत,
चले वीरवर राजा।
चलत आयसी कटि कस तरकस,
कवच धनुष कर साजा ॥
जय कोशल पति की जय जय ध्वनि,
जनता मुख से आयी।
पंक्ति बाँध कर चले नागरिक,
तुमुल जयध्वनि छायी ॥
जाइ जगत जननी मन्दिर करि,
अभिनन्दन सुखकारी।
लै प्रसाद कुंकुम अम्बा को,
वैदिश चली सवारी ॥

शुभशकुन

शुभ शकुनी मुख मकुनी नारी,
सिर पै दही कठारी।
ढरकाये सेंदुर माँगनि में,
लीजै दही पुकारी ॥
पनिहारी पनिघट तै पानी,
भरे शीश घट धारे।
बक विलोकि अरु छलकावति,
अनुज संग लघु प्यारे ॥
चारा लेत चाख बायें है,
बाँए तरु पर स्यामा।

वाम ओर से दाहिन आई,
हरिनावलि अभिरामा ॥
चाटत सिसुहि पियावत पय निज,
सुरभि सामने देखी ।
छेमकरी बोलति रसाल पै,
कहत सुछेम विसेखी ॥
पढ़त स्वस्त्ययन लिये मांगलिक
द्रव्य विप्रवर आये ।
कहि जयजयति दिये फल मीठे,
सरस सुमन बरसाये ॥
नृपति मुदित ह्वै असन वसन तन,
सबको दियो भुलाई ।
पुनि पुनि वदन दिखावत लोवा,
आगे दीन्ह दिखाई ॥
सेना चली चारु चतुरंगिनि,
शत्रु विजय करने को ।
गावत राजा राज्य प्रशंसा,
शौर्य हृदय भरने को ॥

रथ प्रस्थान गीत

"हिन्द में चल के हो निहा खाना वखान कूवकू ।" की लय
(प्रेमघन कृत, भारत सौभाग्य नाटक)

कौशल को मिलै विजय, ईश कृपा सदा लहैं ।
राजा हमारे हों अजय, चलो चलैं जुरैं लरैं ॥
राम भुजा में देय बल यत्न न हो तनिक विफल ।
बैरी हमारे हों विलय चलो चलैं जुरैं लरैं ॥

काली कपालिनी अर्थे, वैरिन को सदा व्यर्थे ।
कोशल केतु हो अनय, चलो चलें जुरें लरें ॥
चंडी का उग्र तेज हो, हनुमान वीर्य हो ।
बढो बढ़ै सदा अमय, भिरै जुरें बढ़ें लरें ॥

सतवाँ सर्ग समाप्त

अठवाँ सर्ग

वैदिश आक्रमण

चैत्र वर्णन

अति बरवै

चैत मास जग आयो, चित अति अनुहार।
हिम आतक कियो अब, जग तैं अभिसार॥
शाल दुशाला को अब, कछु नहिं तन काम।
नहिं जन चहिये तपता, अब आठो याम॥
वशन श्वेत धनि निर्धन, सब को अभिराम।
सीतल वायु सुशीतल जल सब सुख धाम॥
सुखद मास ऐसो मैं, जग को सुख दानि।
कोशल अवतरयो राम नै नवमि अह्यनि॥
पुरुपोत्तम महराजा, महि मै विख्यात।
प्रजा भारती उपकृत, ध्यावत नित प्रात॥
दिवस राम नवमी है, नर नारी जात।
जन सुपरण सरिता मै, सब जाय नहात॥
राम नाम गुन गावै, युवती गुन गान।
अनुपम भक्ति पिता मे, सब करत बखान॥
न्हाय धोय मदिर मैं, दर्शन हित जात।
छवि अनुपम तौ याकी, अति आजु दिखात॥
कदलि स्तम्भ भुरि लहरत, जनु सब बन देव।
पटल दूरवा अरप्यो अरु चौम जनेव॥

प्रदर्शिनी विविध ध्वजा के जनु बहुरंग।
अपहृत राम नरपतिन, जिन जीते जंग ॥
परम सुरीली रोशन चौकी को गान।
राम जन्म सोहर सो, करि पावन कान ॥
जगमोहन मे बैठे, सब कीर्तनकार।
वीणा बेला बाजे, मुरचंग सितार ॥
सुर बहार सुरतनी, लय बजत सरोद।
थाप परन मृदंग करि, विस्तार विनोद ॥
जलतरंग नेता सम, दिरारावत पाथ।
तंत्री सब इक तंत्री, ह्वै गावत साथ ॥
लहरि लहरि धुनि आवै, भैरव को राग।
मनो जगावति भैरवि को अब तो जाग ॥
सितार जम जमा केश - प्रसाधनी गोय।
जनु अलाप वीणा को, जल धारा होय ॥
मृदंग परन जनु अग, सुपुट पुटी देत।
विस्तार - राग साड़ी, है झीनी सेत ॥
नयनाजन मुरकी है, विन्दी समताल।
उठी सिंगार व्यजन, प्रस्तुत इह काल ॥
वसन ललित असानी, तम्बूरा हाथ।
गायक मिस छेड्यो सुर, वीना के साथ ॥
गावन लगे राम को, गुन गन अभिराम।
भये राममय श्रोता, जनु देखत राम ॥
ललित विभास असावरि, को कीर्त्तनकार
गायो, तन्मय श्रोता, घरबार बिसार ॥
सारग छेड़त ही जन, जाने मध्यान।
राम जन्म अब होवै, दर्शक सब जान ॥

त्रिमूर्ति विग्रह

सीताराम लषन को मन्दिर सुठि मूर्त्ति।
विग्रह निरखत भर्त्ती, मन उपजत स्फूर्त्ति॥
भाखत राम मनो है, देऊँ मैं मुक्ति।
सीता सस्मित बोलति, लेवौ जग भुक्ति॥
लछमण मनौं कहत है, देऊँ मैं शक्ति।
महाबीर जनु माखत, लो सेवा भक्ति॥

बजी तुरुही आवत, उत है महराज।
ध्वजा समन्वित वाहन को सगी साज॥
रह्यो साथ सामग्री, विधिवत बहुतेरि।
दूत जोन लायो है, देखन तें हेरि॥
स्वर्ण रजत थारन मैं, राखी पजीरि।
मेवा कतरि बतासा, छाप्यो बहुतेरि॥
अरु अनार थारन मैं, झोपन अंगूर।
सजे सेव बहुरगी, सरदा भरपूर॥
बहु प्रकार के कदली, फल नारीकेलि।
बारह मासी आमन, सोहत बहु मेलि॥
बहु प्रकार के नारगी, को लागी ढेरि।
थारी सजी रही तहँ बहु काजू केरि॥
चिलगोजा बदाम अरु, किशमिश अखरोट।
मुख शुद्धी के हित है, थारन भरि गोट॥
चाँदी सोना बरकन लहि बरफी थार।
बनी गरी पिस्ता अरु, नौरगी सार॥

सोहन पपड़ी थारन, मैं सजी विचित्र ।
छैने के सतरंगे, मोदक जुत इन ॥
हरे चनन के लड्डुआ, घेवर भरि थार ।
सोंठ परी बरफी अरु, नुकतिन की भार ॥
ढके झीन वस्त्रन सों, सब हैं मिष्टान ।
मच्छिन कलुषित होवै, न कोउ हविपान्न ॥

छौम दुकूलन के थे, चमकत बहु थार ।
जरी कलाबत्तू लहि, गोटन के तार ॥
मखमल बने बिछावन, अरु सुठि मसनन्द ।
पलँगा लगी मसहरी, सुन्दर परिछन्द ॥

झूला राम झुलावन, चन्दन को दारु ।
खेल खिलौना बहु विधि, अति सुरँग सुचारु ॥
गेंदन को गजरा अरु, कमलन को भार ।
पुष्पांजलि हित पुष्पन, प्रफुल्ल भर मार ॥

चन्दन दधि घृत मधु, सो कुम्भनि भरपूर ।
अभिषेचन हित विग्रह, घट चीनी चूर ॥
सकल सजी सामग्री, परिषदन समेत ।
पहुँच्यो राजा मंदिर, उत पूजन हेत ॥

शंख ध्वनि घंटा अरु, घड़ियालौ बाज ।
प्रारम्भ भयो पूजन, त्यों ठाढ़ समाज ॥
पंचामृत तब जल सो चन्दन अभिषेक ।
तब भस्म सुगंधित युत, औषधी अनेक ॥
महामूल्य रत्ननसों, सुठि छौम दुकूल ।
कियो सपर्या प्रतिमा, नरपति अनुकूल ॥
करि नीराजन अर्चन, पूजन भगवान ।
सहस्रार्चन को तब, वै कियो विधान ॥

राम नाम को ले वै, पुष्पांजलि देत।
सुमन-दृष्टका सों जनु, बाँध्यो है सेत॥
मानौ पुष्प फुहारा, चरणनि पै जाय।
चरणामृत लहि नीरैं, वा गिरत अघाय॥
पद्म-पुष्प पिचकारी लै अर्चक लोग।
राम जनम खेलन मै, होली को जोग॥
करन लगे नीराजन, दाशरथी राम।
रामनाम सों कुसुमित, भो मंदिर धाम॥

राम नाम महिमा

नाशक तीनों आतप, सुराम गुजार।
बन्दी-जीव विमोचक, करि दया पसार॥
सब सम्पति सुखदायक, उन करि गुन गान।
राम नाम रसना को, है सुधा समान॥
दुर्बल जीव राम लहि, तुन्दुल ह्वै जाय।
बिछुड़ा बछड़ा को जनु, जनयित्री पाय॥
कुटिल कर्म फल नाशक, सेनानी राम।
उभय लोक सुख कारक, रघुवर अभिराम॥
राम नाम संकीर्तन, यज्ञन को तात।
सूर्य रश्मि सम नाशत, अज्ञानी रात॥
सत्य उनहि इक मानौ, असत्य संसार।
जग असार मैं रामहि, जानौ बस सार॥
राम नाम मोदक है, मोदक मन मान
मुदमय जीवन नितही, जनु उत्सव आन॥
राम नाम धन्वन्तरि, जा सुयश महान।
आधि व्याधि मन तन सों, डरि जात परान॥

राम नाम नाविक जिन, भव भवरन ज्ञान ।
दया डाँड सौ खेवत, बचवत तन प्रान ॥
राम नाम है सुहृद, दयालु बलवान ।
तजै साथ नहिं कबहूँ, जबलौं तन प्रान ॥
राम नाम है सत गुन, को वार्णिक रूप ।
सत सचारत तम हरि, करि विमल अनुप ॥
राम नाम है दिनकर, रजतम करि नाश ।
जामौं निस दिन होवै, तन महा प्रकास ॥
राम नाम आसा जग, प्राणिन को एक ।
निराश करत नहि दया, प्रसारनो टेक ॥'
सत्य सन्ध प्रिय राम, सुबोध अति नाम ।
जीवन अमर लहौ जपि, बहि आठो याम ॥
राम नाम है सम्बर, इह सौ वैकुठ ।
कर्म नाश पे जन सब, उत जायँ अकुठ ॥
राम नाम है योद्धा, बलवान प्रवीन ।
मोहादिक रिपु भागत ह्वै के अति दीन ॥
राम नाम उपदेष्टा, ज्ञानी मन्त्रज्ञ ।
भक्ति मार्ग दिखरावै, ह्वा चाहे अज्ञ ॥
राम नाम सुर तन्त्री, करि अनहद नाद ।
ब्रह्नाद सो मिलवहि, मन तन्त्री वाद ॥
पुष्पाजलि विराम मैं, प्रनम्यो भूपाल ।
स्तवन कियो बद्धाजलि, महराज विशाल ॥

शिखरणी

पिता आज्ञा कारी जनक तनया स्नेह उदधी ।
विमाता कैकेयी कुटिल महिला आशय लह्यो ॥

तबौ आज्ञा मानीं कुवचन नहीं तासन कह्यो ।
अहो ! कैसे स्नेही अरि सखि नहीं भेद कछु भी ॥
अहिल्या को तार्यो दशरथ पिता को प्रन महा ।
उवारयो वाली को मथन कर भ्राता अधिपती
बनायो, दाता हौ शरण गत आये पर सभी ।
सुत्राता भक्तों के भव भयहरी हे ! पद नमौ ॥
नमौ सीता माता लषन तव सेवी चरन के ।
नमो वायू सूनू तन मन धरै स्नेह तव मैं ॥
नमौ भ्राता भूरी भरत सब त्यागे सुख अहा !
नमौ तेरी माता जनि उदर धारयो नृप महा ॥

घनाक्षरी मनहर

मानत है राज तंत्र जानत स्वतंत्र तंत्र
तौ हू परतंत्र लौ परे हो कूट यंत्र मैं ।
ज्ञात है कुतंत्र योग तौहू परे प्रेम तंत्र
पितु तारिबे को परे मातु षड्यंत्र मैं ॥
धन्य मोह तंत्र जामे परिवो सुतंत्रता है
यातैं यंत्र अदरत आपु रहि यंत्र मैं ।
औध युवराज ! मंत्र राज मंत्र राज है कै
करुना दराज हौ उवारौ पारो यंत्र मैं ॥

अति बरवै

पूजन भयो अन्त अब, भो बन्द कपाट ।
भोग समय बैठे सब दर्शक मनु राट ॥
लागे गावन गायक, गारी बहि काल ।
चुटकी तारी दै दै, मंजीरन ताल ॥

गारी

(जाके सुरति ककहिया—पलटूदास की लय में)

राम सूधे हो बबुआ, तोहें किये सब ही मकुआ।
तुम्हें ब्याही है सीता, जाके न माय नहीं बपुआ॥
जूठे बैर खीआए, जानौ वहै मोहन हलुआ।
तोरे बैरी की बहनी, काहे लिये नहिं वा घलुआ॥
बापू तीन बिआहे, घर के रहे तूँ ही ठलुआ।
एक धोबिया कहे पै, सीता कियो तूँ तो बनुआ॥

अति बरवै

भोग लगे पै दौरे, सब लेन प्रसाद।
पाय अघाय पेट भरि, इतनो सुस्वाद॥
सब के पाछे राजा हू लियो प्रसाद।
जग को अमृत याही, है बिना विवाद॥
साज बाज ले लौटे, महराज विशाल।
देख्यो आवत बाजी, पै दूत विहाल॥
अट पट है कछु जासों, आवत अति वेग।
हाफत दूत रह्यो जनु, भभकत हो डेग॥
करि प्रनाम बोल्यो वह, कोशल महराज।
चतुरंगिनि सेना ले, हैं पहुँचत आज॥
पुत्र छुड़ावन आवत, सेना सँग साज।
वैदिग्र मर्यादा को, अब राखो लाज॥

पद्धरी

सुनि दियो हुकुम महराज जाव।
सेनापति अब सेना सजाव॥

प्राकार चतुर्दिक सेतु तोड़।
भर दो जल खाईं बाँध फोड़॥
अब रहे मार्ग एकहि प्रधान।
रक्षा का है अब यह विधान॥
रक्खो तोपों को प्रमुख द्वार।
सेना चतुरंगिनि को निचार
यह बाहर भेजो नगर द्वार।
आगे हो हाथिन की कतार॥
दहिने बाँये हो घुड़सवार।
पाछे उनके हो रथ कतार।
हो कवचधारि जितने पदाति।
सब करे सामने युध अराति॥
वैदिश उन्नत मरजाद आज।
सेनापति रक्खो राज लाज॥
कोशलपति की है बड़ी ख्याति।
पर चनी को नहिं भय अराति॥
वन्दी कर सुअन अधर्म रीत।
कर सके नहीं अनुनय विनीत॥
कोशल पति मेरे राज मित्र।
है किया सत्रों ने मिलि अमित्र॥
अब व्यर्थ होयगा रक्त-पात।
सैनिक जन का होगा विपात॥
इस समय व्यर्थ है सब, विचार।
सेना है आई नगर द्वार॥
रक्तांजलि दे सब पाप धोय।
प्रायश्चित्त तबहि अधर्म होय॥

अब धर्म सँकट सों छूट प्रान।
हल किया समस्या ईश ग्रान॥
हम तो प्रसन्न हैं अति सुजान।
हर्ष कवच धारण में महान॥
लो चलो चलें रण-स्वर्ग-द्वार।
सग्राम न मिलता बार बार॥
अवधेश-आक्रमण विन प्रभात।
होगी अनुचित सर्वथा बात॥
तब भी हमको रहना तयार।
रण नीति यही, दो मत विसार॥
ज्ञापयति यथा, कहि कर प्रनाम।
सेनापति गे आदिष्ट काम॥
नृप करन गये विश्रामगार।
सग्राम समस्या पर विचार॥

दोहा

व्यूह रचनि के जतन ही सोचत सब महराज।
सोइ गये परजक पर धारे सैनिक साज॥

अठवाँ सर्ग समाप्त।

नवाँ सर्ग

आक्रमण

प्रातःकाल

ताटंक छंद

अब सम्राट सूर्य आवहिंगे,
उठो नींद तजि हे प्रानी।
बोल्यो प्रात पहुरुआ कुक्कुट,
यह उच्चस्वर सों बानी॥
सगमगाय पच्छी चुह चुह करि,
बचन की शिच्छा कीनी।
प्रात भये चारा हित जावैं,
ईश यही वृत्ती दीनी॥
दुर्ग तुम्हारी नीड़ रह्यो तहँ,
बाहर मति दिन में आनो।
बहरी बाज हमारी बोली,
बोलि सजें अपनो खानो॥
निकसि न अइयो प्यारे जौ लौं,
दिन दिनेस नहिं विस्तारैं।
तुम्हें लाइहैं हम मीठे फल,
मंजु मृदुल रस जे धारैं॥
कूजित कुंज गुंज गूंजित बन,
मुखरित बाग खगाली से।
अरुन सिखा बोल्यो "है जागो,
भीगी नींद निहाली से॥"

हरवराय यह सुनि सेनापति,
तब तूर्य घोषणा दीनी।
खड़बड़ाय सैनिक उठि बैठे,
आतुर नित्य क्रिया कीनी॥

झनझनात शस्त्रास्त्र सजे सब,
सैनिक सारी सेना के।
हिनहिनात बाजी बाके पै,
चले बाँधि पगरी बाँके॥

घरघरात रथ भये सुसज्जित,
आयस अस्त्र रथी साधे।
फरफरात ध्वज धरे हाथ,
उपनीम सीस बाँकी बाँधे॥

बिलबिलात ऊँटन की सेना,
लगा बजावन रण डंका।
घनघनात हाथी का हल्का,
रौंदत चलो न डर धका॥

मचमचात सब चले पदाती,
रण में कौशल दिखलाने।
सनसनात कवचन को धारे,
तीर धनुष कर में ताने॥

पुन॰ तूर्य यह घोषण कीनो,
पंक्तिबद्ध सब हो जाओ।
बढ़ो चलो आक्रमण करो जब,
राजा की आज्ञा पाओ॥

जय महराज करन्धम जय जय,
जय कौशल जनता राजा।

उठी जय ध्वनि नभ पूरित कर,
दूनो कर गाजा बाजा ॥
तूर्य तीसरी बाजी तुरही,
चली करन्धम की सेना।
मुक्त करन युवराज आपनो,
वैदिस सों करिकै ठेना ॥

उत्साह होति सहित जय ध्वनि,
समर गीत गावत सेना।
विजय करै वैदिस नगरी को,
रण भेरी बोलति बैना ॥

बहति वायु अनुकूल हरति श्रम,
अध्वन कृत सब सेना को।
चुग्गी मारि बाज इक बैठो,
कन्धा पै नृप को बांको ॥

पच्छिराज को बड़े प्रेम सों,
नरपति निज हिय तें लायो।
जय सूचक लखि उन पग मैं
राजा कनक किंकनी नायो ॥

या समय करन्धम वैरी थे,
कीर्ति तदपि उन भारी थी।
वैदिश के वासी नारी नर,
इच्छुक दर्शन सारी थी ॥
कैसे हैं वह योगी राजा,
फूँकत जे कर तैं जायो।
महा विकट राछस सम गनको,
वैरिन को जे सपरायो ॥

दुहँ ओर अति राज मार्ग के,
भारी भीर जुरी आई।
नर नारी मन मुदित भये सब,
दरसन राना को पाई॥

कोऊ कहत "दोष इनको नहिं,
जैसे ज्यों इन ख्याति रही।
उन्नत कन्ध उदार समुज्वल,
यथा सासु जी कहति रही॥

मम नृप करि अधर्म रन कीन्ह्यो,
बन्दा सुन ताको प्यारो।
सेना लै आवहि नहिं काहे,
ताको करिवे को न्यारो॥"

"अरी अनारिन कहा कहे तू,
रण म अधर्म है कैसो।
इनके पूर्वज हता बालि कौ,
कै छल जिमि व्याध ऐसो॥

रही ताड़का अबला तबहूँ,
राम ताहि कर बध कीनो।
यज्ञ करत रावन सुत बध मैं,
लखन ढग सोई लीनो॥

'नरो कुंजरो वा' यों छल करि,
अर्जुन गुरु मारयो है।
कर्ण महादानी कुंडल हरि,
भ्राता बहि हति डारयो है॥

जानि शिखंडी को आगे करि,
भीष्म पितामह को मारयो।

रण में और हरण नारी में,
धर्म अधर्म धरी न्यारयौ ॥"
"उदाहरण दीजै कितेक पै,
अधर्म की निंदा होवै।
धर्म बखानत शास्त्र पुरातन,
सुरहूँ सुरस बाका नोवै ॥
धर्म अधम दोउ नैरी हैं,
इनको फल को तौ देखौ ॥
लाभ छनिक अधरम तै पावत,
अध पतन थात लेखौ ॥
कुरु पान्डव को अन्त भयो कसि,
भला दाठि या पै डारौ।
जीवन-वृक्ष धर्म सौं पालित,
देतौ सपति है चारौ ॥
अम्बरीष शिवि कथा जगत मैं,
है नहि काको चित्त हरै।
कौन धम पालक या जग मैं,
जो न सुधा रस पान करै ॥"

चतुरंगिनी सेन चलि आइ,
पहुँची नगरी बैरी के।
ध्वजा पताका वा नगरी को,
दीख परन लागे नीके ॥
पुर प्राकार परे सेना थी,
सब बैदिश रन कौ ठाढी।

सका कारक डका बाज्यो,
जय धुनि सुनि सेना बाढी ॥
कोशलपति पठयो वैदिस को,
महाकाल सज्ञा-धारी।
लोहित लोचन विकट मुखाकृत,
रिपु हिय भयकारी भारी ॥
दूत कहो सदेश हमारा,
जाकर वैदिश राजा से ॥
आधिपत्य माने कोशल का,
सामन्त इतर राजा से ॥
रक्तपात औ नगर नाश की,
यदि उनके उर अभिलाषा।
तो अब रण में नढो पढो फिर,
प्रलय काल की परिभाषा ॥

ॐ

तीव्र तुरग पै दूत ऐंन्तो,
चचल श्वेत ध्वजाधारी।
जाय कह्यो वह सधि व्यवस्था,
कोशल नरपति की सारी ॥
दुखी विशाल देव सुनि बोले,
जाव कहो निज स्वामी से।

कहे आप ही कौन अधिक प्रिय,
स्वतनता अभिरामी से ॥

कनक पींजड़ा भला न लगता,
सुस्वाद कीट को दाना।
चोंच चलाता घायल होता,
पर प्रयत्न करता नाना॥
अधमरे जनक लड़ते होते,
तब, व्याधिनि शिशु है पाती।
स्वतंत्रता जड़ पशुओं में भी,
इतना त्याग महा लाती॥
कौन कथा तब है मनुजों की,
देवों को भी है प्यारी।
भीषण रण भी हुए जगत में,
बही रक्त सरिता भारी॥
कल्प वृक्ष तो कथा कहानी,
है धर स्वतंत्रता दानी।
बुद्धि विभव बल भोजन छाजन,
सुख संमृद्धि की है खानी॥
देश उसी से उन्नत होता
सुख वैभव को है पाता।
सत्य उपासक होते वासी,
कर्म अकर्म धर्म ज्ञाता॥
देश देश सम्मानित होता,
सभ्य देश माना जाता।
वैरी सब आतंकित रहते,
मित्र भाव सबमें आता॥
देश निवासी दिव्य गुणी हो,
सतयुग पुनरपि है आता।

आता है न अकाल वहाँ वह,
भय स्वतन्त्रता से खाता ॥
स्वतन्त्रता है काम धेनु जो,
धन चरित्र सब है देती।
सेना शौर्य धैर्य धार्मिकता,
दे अवगुण हर है लेती ॥
देवी स्वतन्त्रता सेव्या है,
परमाराध्या है ऐसी।
जननी सी जन हित नित करती,
देवी नहीं कहीं वैसी ॥
जग स्रष्टा ने दी स्वतन्त्रता
पशु, पक्षी नर नारी को।
वचन बुद्धि काया कर मन को,
आचारी व्यभिचारी को ॥
हम सबका अपराध महा यह,
जो स्वतन्त्रता प्यारी को।
हरण किया धन पूँजीपति है,
उस स्वाधीन विचारी को ॥
सब सुखदा स्वतन्त्रता देवी,
तब कैसे उसको त्याग।
यतन भजन कर नृपत्व पाये,
भला उसे कैसे त्यागें ॥
हृष्ट पुष्ट जनता अकष्ट,
सतुष्ट राज्य से है मेरे।
उसकी स्वतन्त्रता हम तज कर,
बनऊँ कौशल के चेरे ॥

सुख न स्वप्न में भी आता जो,
देश दासता में आता।
चरित हीन हो दीन निराशी,
अज असभ्य दुख पाता॥
असन वसन से हीन दीन गुण,
हीन अधन जन हो जाते।
मारे मारे फिरते जग में,
रोते किन्तु न रो पाते॥
बालक बन ककाल रूप से,
व जनक हीन से होते।
भिक्षाटन दिनचर्या होती,
प्रति दिन जीवन हैं खोते॥
निरूद्यमी आलसी अधर्मी,
लक्ष्य विपत के हैं होते।
सब सुख से वञ्चित हो जीवन,
मीख मीख के हैं खोते॥
महाकाल सुनकर यह बोला,
है स्वातन्त्र्य तुम्हें प्यारा।
कोशल सुत को क्यों बन्दी कर
रक्खा कोशल से न्यारा॥
कहा विशाल देव ने चिढ कर,
सुता हरण के पापी थे।
प्रायश्चित्त पाप का करते,
वे अभिमान-सुरापी थे॥
कोशल सुत जान उन्हें जो था
किया क्षमा प्रस्ताव यहाँ।

हुआ न वह स्वीकृत उसके तो,
बहुमत था विपरीत वहाँ ॥
तीन मास में हो विमुक्त वे,
कोशल को फिर जायेंगे।

हैं अन्यथा—चार के कर्त्ता,
उसको कथा सुनायेंगे ॥
क्षत्रिय कुल में हरण प्रथा है,
निन्दित इसे वे मानेंगे।

कोशलपति कोशल फिर जायें,
तब हम न्यायी जानेंगे ॥
हरण प्रथा हम में लज्जास्पद,
सब विपत्ति की है माता।

भावी भव असभ्य मानेगा,
सभ्य समय अब है आता ॥
यह दुष्प्रथा निवारण इसका,
अब कर्त्तव्य उन्हीं का है।

आर्य कार्य है धार्य धर्म यह,
सभ्य यशोधन ही का है ॥
वैदिश का स्वातन्त्र्य हरण का,
यदि विचार उनके मन में।

क्षात्र धर्म का है अनुशासन,
वीर सुगति पाते रन में ॥
कहो दूत सम्राट करन्धम से,
विधिवत बातें मेरी।

रण से उन्हें विमुख करने का,
करो बुद्धि जितनी तेरी ॥

दोहा

दूत गयो पुनि लौटि कै, कह्यो नृपति समुझाई।
उत्तर दियो विशाल नो, न्याय तर्क युत लाइ॥
सब मिलि सम्मति या करी, करैं मुक्त युवराज।
भामिनि का ब्याहैं अबै, सधि हाय सुख साज॥
महांकाल सुख काल लौ, उमगत परम प्रसन्न।
श्वेत ध्वजा कर मैं लये, वैदिश गयो प्रपन्न॥
उत्सुक अरु चिंतित सबै, रहे जोहतो दूत।
आनन लखि वा दूत को, शोक भयो निर्धूत॥
अवयव सधि विचार कै, वैदिश के महराज।
कह्यो सधि स्वीकृत हमै, कहो जाय युवराज
लये सग आवत अबै, करन सुदर्शन आज।
वैदिश को बड़ भाग है, अतिथि भये महाराज॥

कुण्डलिया

अतिथि अनोखे आय हैं अब अदृष्ट अनुकूल।
बड़े सुकृति सौं मिलत है अतिथी मगल मूल॥
अतिथी मगल मूल, शूल पापन को घालत।
परम धर्म का मूल मर्म लखि जे नित पालत॥
हालत वह अधनीव शुद्ध करि वच मन चाखे।
ऋषि जन जज्ञ विधान कियो लहि अतिथि अनोखे॥
दर्शन होत अदर्श अमर सग समय वितावत।
भाग्य विभव उत्कष हमै अवसर यह भावत॥

सोरठा

कहना जाकर दूत, स्वीकृत है प्रस्ताव सब।
आनद होय अकूत, सधि सुसम्मति से सदा॥

नवा सर्ग समाप्त।

दसवाँ सर्ग

वैदिश आतिथेय

रोला

मोदमयी नगरी को दीपित करि अमलानन।
सुशुभे सकला कला धारि नभ में मृगलाछन ॥
मानौ पयनिधि पयस प्रचायिति पुज फेन सम।
कम्पित-कामिनी कान्ति जयो जनु हस समुत्तम ॥
निशीथ स्वामिनी को है जनु कुण्डल मौक्तिक।
पुण्य कर्म को प्रतिनिधि, मानौ भास्वर भौतिक ॥
तिमिर तिमिस्रा के हो, तुम तो जनु आखेटक।
सत गुन दधि मनौ मथित, तुम हो भास्वर तक्र ॥
उडगन क्रीड़न कलित समुज्वल मानौ कन्दुक।
देव पितर तृपितन के हौ तुम तो अमृत धुक ॥
नमस नील उच्छिन्न मे मानो मनी स्यमन्तक।
सहस रश्मि के सदा रह्यो तुम तो प्रति स्पर्धक ॥
सुमुरि सिमन्तिनि के हौ नैसर्गिक तुम दरसी।
अभिसारिन नारिन के हौ प्रिय पथिक सुदरसी ॥
जाति ब्राह्मण सात्विक के रक्षक तुम अधिपति।
दयिता सरस सुदर्शन के उपमेय कठिन मति ॥
विराट पुरुष के हौ तुम तो नयन समुज्वल।
चरु चकोर के हौ तुम, मानौ चुम्बक उज्वल ॥
निशा गुप्तचर-द्रोही अभिसारिन नारिन के।
द्वन्द्व साम्य ते लह्यो कलक हु व्यभिचारिन के ॥

कलित कलानिधि की कामुक कमनीया अति छवि।
वरनरणी विरहिनि महि सकै नाहि महिला कवि॥
रंजन मैं रति कै मन, आमोदित रजनीकर।
लगो लुटावन सुषमा किरिनन तै निगरी पर॥
वैदिश नगरी चमकन लागी जनु अभ्रक मय।
आतिथेय मै वितरत, पूरन ससि जनु मणिचय॥
भये अयाच्य तृन अजु सब सर सरिता निर्झर।
पल्लव पल्वल पयनिधि, कण कण बालू प्रस्तर॥
आतिथेय वैदिश मैं मनो महायक शशधर।
कोन कोन तै हेरि भगायो तम रजनीचर॥

❀

जदपि जोन्ह तउ नृपति, दीप दल सौं करि शोभा।
मनौ अवनि पै आनि, धस्यो तारक नभ ओभा॥
सजे लाल कन्दील अवलि बिच मै राजत सित।
जनु अनेक मगलन, मध्य है उशनस शोभित॥
रँग रँग कौ जल करत, फुहारन मिस आवर्तन।
नगन नाग कन्यन को, जनु हिय हर्षक नर्तन॥
घर घर वन्दनवार रसालन सै अति शोभित।
मडित पुष्पन चारु सरै तोरन के निर्मित॥
चहल पहल चातुष्पथ चहुँ दिसि है पथ पत्तन।
मोद भरी सब नारी विहरत अति प्रमुदितमन॥
विधि विलास मैं सीरु, सिरावति विधु बदनिन को।
विधु विमुग्ध विटपन बिच, झाँकत है सुतनिन को॥
महलन माहिं विराजी महिलाराजी बन ठन।
कोशलपति के सुभागमन की सोभा निरखन॥

रंग बिरंगे ग्रसनन सों सब लगें सुसोभित।
कौतुक प्रिय नागरिकन, को संदोह जुरो तित॥
ग्रालवाल लै सगा सँघाती जाय जुरे तहँ।
जगमगात मंडप मनि सों है जोर जसन जहँ॥

ग्रति मन मुदित विसाल देव ग्ररु नृपति करन्धम।
राजत जहाँ ग्रनर्घ्य सिंहासन पै ग्रति उत्तम॥
नृपन दोउ के बीच ग्रवीक्षित यों छवि छाजत।
ज्यों श्रीहरि बलराम बीच प्रद्युम्न बिराजत॥
मंत्री मुनिजन परिषद सभ्य नागरिक गुरुजन।
बैठि विलोकत सस्मित ग्रसि लाघव सैनिकगन॥

आनन्दवर्धक छन्द

फेंकि नीबू को विभाजत ग्रसी तैं।
वेधतो कोऊ शरासन ग्रनी तैं॥
नयन मीलित बेधतो लक्ष्यहु चलित।
चरण सों करते चलित तोपें त्वरित॥
भागतो बाजीन पै कोऊ चढत।
जाय कै हस्तीन मस्तक पै बढत॥
पावक परिधि मैं कुदातो ग्रश्व को।
फेंकि शूलहि बेधतो है शूल को॥
सामने सिर पुरुष सैनिक कै तहाँ।
काटतो वह पुरुष को सिर पै जहाँ॥

बाण सो भारत कपोत उड़ाय कै ।
शब्दवेधी शर चलावत चाय वै ॥
एकलव्य अर्जुन कै कथा हेटा परी ।
शस्त्र लाघव से सभा चम्भित करी ॥

दोहा

कौशल वैदिश सैनकान देख्यौ कोशलराज ।
स्वर्ण रजत दान्हें सबहि भूपति को सरताज ॥

तन्त्र वाद्य

तन्त्र वाद्य आरम्भ भो वादक परम् प्रवीन ।
सुर सिंगार सितारियन कुशल शारदा वीन ॥
सुर सिंगार सिँगार सुर, सुर में करि लय लीन ।
तार सितारन जगमगा हिय को तरलित कीन ॥
वीन-कार के वीन नै सब वादन सुर छीन ।
सुर तन्त्री पद को कियो चरितारथ वह वान ॥
लान भये सुर में सबै भव चिन्ता सां हीन ।
भीनि गये सुरमै सुभग सम्मोहन सुर तीन ॥
स्वर-सिंगार अलाप अरु स्वर मिलाप विस्तार ।
लह्यो स्रवन ही रस सकल, सुग रस जो स्वर सार ॥
कह सिहाइ इन्द्रिय इतर, भईं स्रौन हम नाहि ।
मुख कण्ठ रसना भन्या धन्यसान तुम काहि ॥
चलत नीन पै लखि करहि, नैन सगर्व प्रवीन ।
निहसि व्यग्य बोल्यो वचन स्रौन रहे तुम छीन ॥
जा कारन पायूषमय सुर निकसत हैं वीन ।
ताको तुम नहि लखत हौ व्यर्थ गर्व मैं लीन ॥

श्रोन कह्यो दीरात रह्यो कारन को तुम नैन।
कारज फल चारौ रसिक जो निरखुद्धी हैं न॥
अँगुरिन चूमौ श्राय के, कर भारात इन्द्रीन।
मेरे करतब को निरखि, है जावौ सब दीन॥
चढा चढी बतकही की, होत रही ना काल।
सुर तन्त्री के तन्त्र मे तन्त्रित सभा विसाल॥
डोलत विजना, ब्याल लौं, सिगरो रह्यो समाज।
वाद्य विमोहित हरिन लौं, श्रोता रहे विराज॥
स्वप्न सौख्य हित जिमि सने ह्वै उन्निद्र सिहात।
बीना बादन रुकत त्यों आनँद छीन विभात॥
साधु! साधु! सब करि उठे जनु मृदग को थाप।
किटकिन करि बरसन लगो रुपया कोशल छाप॥

नर्तन कला।

पद्धरी छन्द।

अब चली इन्द्र को अतुल अस्त्र।
करिबे को बीरन को अशस्त्र॥
अब बदल गयो सुखमा समाज।
वाद्यक दुव के दुरि लहत लाज॥
है नयन गए सब एक ठौर।
देखी नारी नहिं मनहु और॥
बहु नाग कन्यकन को बखान।
पै याकी छवि है हरत प्रान॥
विस्मित कवीन कल्पना भाँति।
या बीर कटाछनि सों सिहाति॥
देखत याको दर्शक सुभाय।
वा नयन चार चाहत झुकाय॥

पैया नहि देखत ओर ओर।
नहि या जनु देखन योग ठौर ॥
जनु रूप गर्व को मूर्ति मान।
या वशीकरन सोचत विधान ॥

इत बजत साज करि मधुर गान।
जनु मधुप जगावत मुकुल प्रान ॥
सब साज लहरि मैं मुग्ध प्रान।
औचक तब छमकि त्रिभंगि टान ॥

दिखरैबे को नर्तन कला हि।
यौं मोहन हित दर्शकन चाहि ॥
है नयन कहत कछु ओर ओर।
उत कर दिखरावति ठौर ठौर ॥

पग छम छम कै जब ठमकि जात।
तब होत करेजै कुलिश घात ॥
है लास्य देत हिय मैं हुलास।
तोडे पै तोडत मोह आस ॥

यौं बनि मयूर थिरकत विभोर।
तब ठमकि चलत पनिघटन ओर ॥
या लचकि लचकि घट भरत जाय।
पनि घट लीला की रति दिखाय ॥

कबहुँ बनी सपेरिन मुख रुमाल।
दर्शक-अहि को करि कै विहाल ॥
कबहुँ बनी अभीरिन मटक चाल।
मटुकी फूटत मोहन कुचाल ॥

करि कुरुख नयन तिवरिंन चढाय।
देवहि उरहन कंचुकि दिखाय ॥

कस यह अनीति देखहु कुमार।
गोरस गगरी लीन्ही उतार॥
दीनो दवाय सब सदन ग्वाल।
देखौ अनीति है ग्वाल लाल॥
पुनि छोरी को उन नटन कीन्ह।
झोरी अधीर को बगल लीन्ह॥
अरु मोहन सों रचि फाग कीन।
दर की कचुकि ह्वै कै अधीन॥
वा हाथ जोरि मुख मोरि मोरि।
वर जोरी नटि उन वहत खोरि॥
जिमि सुख नहि है होवै अनन्त।
मंगलामुखी को नटन अंत॥
कहि साधु साधु वै दोउ राज।
खिल्लत दीनी नर्तकिन ताज॥

संगीत-शृङ्गार

दोहा

सुन्दरता की सुता इक बड़ी लजीली नारि।
सभा मध्य से आय करि प्रथमहि दियो विसारि॥

पद्धरी

तजि लाज चितै नर नृपति ओरि।
सिर को झुकाइ कर जुगल जोरि॥
वा दहिनो बायों ओरि देखि।
सारगी सुर सों सुर मिलेखि॥

सुर क़ोमल कठनि तै मुटारि।
राग कान्हरा छेड्यो विचारि ॥

राग कान्हरा

होवै अतुल सुखमार संतत,
मेल औ प्रिय मिलन मै ।
मुख मिलन कठहु मिलत,
चचलता चलति जुग करन मैं ॥
हिय हिलत लोचन खिलत,
तन मिलत है द्वै एक ज्यों ।
द्वै राज्य कै सम्मिलन सौं,
सुख लहत दोऊ सरस त्यों ॥
तिमि आजु छवि यह है बनी,
भूपतिन द्वै के मिलन सों ।
जिमि उदधि तुंग तुरंग लील,
क़िलोल कै ससि क़िरिन सों ॥
पारथ महारथ श्याम सारथ,
मिलन ज्यों सारथ भयो ॥
त्यों जुग नृपन कौ संधि सौं,
यह मिलन चरितारथ भयो ॥
बस यह विनय अखिलेस सों,
करुना कृपा सरसै सदा ।
निज चित प्रजा हित हित रहै,
श्रुति विहित सासन सर्वदा ॥

पद्धरी

वह गान गाय करि मुग्ध प्रान।
अभिराम ग्राम को करि विधान॥
सुर सुधा तान मैं भरो तोलि।
भव-व्यथित हृदय की ग्रन्थि खोलि।
मुरली मध्यम माधुर्य मेलि।
विस्तार राग को कियो केलि॥
जनु जानि परो उत कृष्ण आई।
इत सुनत राधिका टेरि धाई॥
विरहानल सो मोको बचाव।
अस सुमुखि सुतनि दिखराय भाव॥
अलकन विखेरि अंचल उघारि।
विनवत लीजै मोहन उबारि॥
जौं रूप धरनि की होत शक्ति।
धरि रूप कृष्ण को सबहि व्यक्ति॥
आवत देखत राधा विहाल।
अस भाव उच्च दिखराय बाल॥
श्रम बिन्दु निवारत थकित बाल।
विश्राम करौ बोले भुवाल॥

राजकीय भोजनोत्सव

दोहा

भोजन करिवे कौ उठे राजा परिषद लोग।
भोज्यागारन को चले उत्तम भोजन जोग॥

बहु, विस्तृत आगार में लगे क्षौम आसीन।
कंचन चौकी नृपन हित रजत हेतु मतीन॥
औरन हित चित्रित बहुत आसन लागो भूमि।
लगे रहे व्यजन विविध व्यजन रहे उत झूमि॥
लेह्य चोष्य अरु चर्व्य सब, पेय सुवासन पूर।
तृप्त करन उन जनन को, जे भोजन में सूर॥
गिरि गोवर्ध सों बने, भोजन व्यंजन केरि।
देखि घटत कछु हू कहूँ, देत और तहँ गेरि॥
भोजन करिबे के समय, कुशल विदूषक राज।
हास्य जनक वार्ता कहत, मौनिन डारत गाज॥

हास्य शृंगार

खाजा खाजा ओ सबै, खाज होय तुम आज।
रस गुल्ला सों पेट भरि, पेट बजै जिमि बाज॥
चटक चटपटा चाखि के सीसी गावो गीत।
मीठो क्षाय निवारियो पै हो मिठुआ मीत॥
चन्द्र-पुरी चम-चम भजौ, पेटराज महराज।
मुनि जन दुबरे पातरे, भाग्य सराहत आज॥

कुंडलिया

दीरघ जिनके पेट है, शनि जनु प्रविसे पेट।
नजर न लगै धन्य हो, करो भोज्य आखेट॥
करौ भोज्य आखेट बने हो लम्बोदर तुम।
पेट सँवारौ हाथ फेरि, टूटी करि कै दुम॥
खस्ता करि निरबस ध्वसि पापर अनगिनके।
कँपत रसोइया देखि पेट हैं दीरघ जिनके॥

हसते सुनत ठठाय सब, करत भोज्यसुस्वाद।
मूसा सम कोऊ मरत, कोऊ जनु दुःस्वाद ॥
कोऊ जनु दुःस्वाद चाखि, चखि रासत कुलंरि।
बुतरन पूर्यो थार, खाय जनु सगक पेट भरि ॥
बदवा इबरत कोउ, पेट कर फेरत कसते।
'भंडारा भरपूर' सुनत, हैं सब जन हँसते ॥

सोरठा

भोजन सभा समाप्त, पुनि आये सब जशन जहँ।
सब दिन नहिं यह प्राप्त, नृत्य गान सुश्राव श्रम ॥
भोजनान्त महराज, गये शयन को शयन-गृह।
भयो स्वतंत्र समाज, सानँद नर्तन को लखत ॥

दसवाँ सर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ सर्ग

समस्या

पुत्र धर्म

सार छन्द

नि सन्देह अर्वाचित बोले,
पुत्र धर्म के नाते।
पिता धर्म पालन करना है,
सभी पुरान बताते॥
समझ मान्य आदेश पिता का,
हनन किया निज माता।
परशुराम का कृत्य विदित जग,
पुत्र धर्म के ज्ञाता॥
आशुतोष सम पिता वचन से,
पुनरपि जीवित माता।
अपराधी क्षत्रिन के शासक,
हैं सुत धर्म विधाता॥
दाशरथी दारुण दुख भोगे,
पिता प्रतिज्ञा त्राता।
भले जानते पुत्र धर्म को,
तब भी है मम धाता॥

नारी प्रेम

पिता चरण में दीन विनय यह,
स्वीकृत करें हमारी।
हरण किया तो किया, करेंगे
न पाणिग्रहण कुमारी॥

जिसने देखा परास्त जिसको,
कैसे स्नेह करेगा।
बिना प्रेम नारी का जीवन,
मरु सम सदा रहेगा।

पुरुष और नारी में केवल,
यही भेद है होता।
बिना प्रेम-नौका के उसका,
जीवन खाता गोता॥

सूत्रधार जीवन-नाटिका के,
प्रेम महोदय बनते।
बिक जाती उनके हाथों में,
करती जो यह कहते॥

प्रेम नाम लेकर वह उठती,
पीती प्रेम सरस रस।
जीवन सौख्य गरल हो जाता,
बिना प्रेम के बरबस॥

जितना ही सुखकर प्रबन्ध हो,
दुःख रूप हो जाता।
प्रेमहीन जीवन नारी का,
जीवन सिन्धु सुखाता॥

चत्राणी है राजकुमारी,
पक्षपात वीरों का।
हृदय करेगा उसका मन तो,
नहीं रणाधीरों का॥

भारतीय ललना संस्कृति

मन-वैज्ञानिक सुत की वार्ता,
सुनकर कोशल राजा।
साधु! साधु! है भाव उच्च! क्या
युक्ति-युक्ति से साजा॥
भूल गये लेकिन विचारना,
संस्कृति भारत नारी।
सुगुण देखती पति अवगुण में,
रहती नित आभारी॥
होता है आराध्य देवपति,
गुणागार सा भाता।
प्रेम विचारा अनुचर बनता,
निज पति में रति लाता॥
कर्म बचन मन तच्चरणों में,
अर्पित करके सारा।
मव्य स्वरूप सती बन जाती,
यह आदर्श हमारा॥
आर्य जाति की ललना में है,
यही भेद औरों से।
पत्नी-नैन स्वपति चरणाम्बुज,
रत होते भौंरों से॥

अध स्वपति पाकर गान्धारी,
आजीवन गत नयना।
रसन बाधकर बनी अनयना,
यद्यपि पकज नयना॥

जनक दुलारी कोशल तन्वी,
कोशल सुख को त्यागा।
कटक वन पथ गिरि कक्करीले,
पति सँग रही अभागा॥

दशकन्धर दशदिक का विजयी,
धन तन जीवन सारा।
अर्पण किया चरण सीता के
अनुनय करके हारा॥

यद्यपि आस नहीं दर्शन प्रिय,
जय की किंचित आशा।
तब भी सतीत्व भाव न त्यागा,
त्यागा सौख्य पिपासा॥

राज्यच्युत पति सग गई वह,
शैव्या साध्वी रानी।
कोसा नहीं कान्त को कुछ भी,
न दुर्वासा अभिमानी॥

एक एक कर ध्वस्त किया है,
तुम तो सब राजों को।
कौन जानता नहीं तुम्हारे,
घातक तीव्र शरों को॥

व्यर्थ तुम्हारे हैं विचार सब,
व्यर्थ निषेध तुम्हारे।

होंगे प्रसन्न कोशल वैदिश के,
मुनि जन ऋषि जन सारे ॥
होंगे प्रसन्न राजा वैदिश,
उनकी सुता कुमारी।
होगी प्रसन्न चीरा औ हम,
देखत वधू तुमारी ॥

वैवाहिक विचार

"पितृ चरण निर्लज्ज न कहना,
वैशालिनि देखा है।
परम सुशीला है मोहक मन,
सुन्दरता रेखा है ॥
सती भाव होगा उसमें पर,
हृदय डक मारेगा।
था बन्दी पति मेरा इसका
चित्त चुनौती देगा ॥
पयस-प्रेम में क्षार मिला कर,
गर्हित पेय करेगा।
प्रेम सलिल ज्यों मलिन पंकयुत,
सब स्वारस्य तजेगा ॥
पुरुष जाति होते हैं स्वार्थी,
स्वार्थ साधना बाना।
स्वार्थ प्राप्ति में अघ जघन्य कर,
वह जीवन भर नाना ॥
तामिस्र लोक में गिर कर वह,
घोर क्लेश भोगेगा।

कर्म बाण जो छूटा छूटा,
क्या लौटा पायेगा ॥
साधन स्वार्थ परम गर्हित है,
इसको स्वयं विचारें।
क्षमा करें हे पिता दया कर,
परिणय बात विसारें ॥
कि कर्त्तव्य मुग्ध कोशलपति,
श्री विशाल से बोले।
राजकुमारी से पूछो अब,
वह निज हृदय टटोले ॥
चिलमन पाछे रही कुमारी,
सुनती सब वार्ता को।
जीवन मरण समस्या को लखि,
बोली तजि लज्जा को ॥
"हरण, वरण तो तुल्य सदा सों,
यह विवाद सब कैसो।
ब्याह आठ विधि स्मृति में भाखो,
हरण विधी उनमें सो ॥
पतिभाव भयो है चरणन में,
उनको स्वामी जानौ।
मरजी जो हो श्री चरणों की,
सिर माथे लै मानौ ॥
उत्तर जब या सुन्यो अविच्छित,
प्रत्युत्तर पुनि दीने।
हरण प्रथा तो निन्द्य कहा है,
स्मृति के सब ज्ञानी ने ॥

विवाद विफल से हित न होता,
तू अबोध अबला है।
करो विवाह जाय उससे जो,
अभिभव-रणवाला है॥

हो अखंड यश वीर्य वान जो,
समर दलित न हुआ हो।
परमाराध्य वही अबलो का,
जो अनिन्द्य योद्धा हो॥

नर सब होते हैं स्वतंत्र पर,
परतंत्रा नारी होती।
अपमानित हो बन्दी नर तो,
मनुष्यत्व का थोती॥

सत्व नहीं परिणय का उसको,
परतंत्रा अबला का।
जीवन हुआ निरर्थक मेरा,
हूँ अपमान शलाका॥

जिसने देखा मुझे पराजित,
है अपने नयनों से।
क्योंकर हा! उसका हो सकता,
कहाँ प्रेम अपनों से॥

व्यर्थ विजल्पन से दुख होता,
निर्णय यह मेरा है।
हरण सत्व करता विमुक्त अब
स्वतंत्र तन तेरा है॥

ब्याह करो जिससे जी चाहे,
यह सम्मति है मेरी।

सुखी रहो तुम जहाँ रहो,
करें ईश रक्षा तेरी ॥
बड़भागी होगा वह नर जो,
अधिपति होगा तेरा ।
भूल जाव अपमानित नर को,
मनन करो मत मेरा ॥
सुनि कै वह हिय कै स्वामी को,
कुलिश पात सम बानी ।
लोक लाज को तजि बोली वह,
जाके हाथ बिकानी ॥
बड़ी बुद्धि है प्रभु है तुमरी,
अल्प बुद्धि अबला हौं ।
पानि पकरि के हरन कियो तुम,
अब तो मैं बिकला हौं ॥
बिकि गई आप के हाथनि मैं,
पति मान्यौ मति मेरी ।
साक्षी रहौ दिवस को अधिपति,
दासी अब मैं तेरी ॥
साक्षी रहौ मोर ध्रुव निश्चल
उडपति नभ दिक चारो ।
साक्षी रहौ लोक के स्वामिनि,
कुल देवता हमारो ॥
गलित होय काया यह मेरी,
जौ दूजौ पति धारौं ।
कवलित होऊँ काल बिना जौ,
मन दूजे पै वारौं ॥

लूक टूटि जारौ या तन कौ,
छारछार के डारौ।
फेंकौ जाय सहारा में या,
उदधि उद्धती खारौ॥
जौ मैं व्याहूँ दूजे नर कौ,
या जीवन छोटे में।
पुनर्जन्म होवै तो मेरो,
नीच जन्तु खोटे में॥
तजि कै राज पाट घर सबरे,
तापस बन होऊँगी।
तप सो मेटि अभाग आपनो,
तुमरो पग सेऊँगी॥
पश्चाताप करौ नहिं कुछ कुल
तुमरे कै यह रीती।
परिणतगर्भा राम विवासित,
आयु जानकी बीती॥
यह कीने महिषी निर्वासन,
तुमनै महिषी भावी।
रवि वंशी होवैं निष्ठुर अति,
होवैं क्रूर स्वभावी॥
सुनौ पिता एकाकी तनया,
तापस वृत्ति लहैगी।
गौरी लौं पावौं अपनो शिव,
नहि तो प्राण तजैगी॥
लेवौ ये पैत्रिक आभूषण,
चौमी साड़ी लेवौ।

देवौ मोको एक कमडलु,
मन हित आज्ञा देवौ ॥
छोड़ौ अब अनुराग सुता की,
जनु नहिं कोऊ जायो ।
भूलौ आपुन लाडिलि को जा,
करत रही जो भायो ॥
धर्म प्रेम दोऊ की आज्ञा,
की होऊँ अनुचारी ।
युवरानी होनै कौ प्रस्तुत,
भिक्षुक वल्कल धारी ॥
नारी को या सत्य प्रतिज्ञा,
वारण यत्न न कीजै, ।
युक्ति उक्ति की बात न काजै,
व्यर्थ काल नहिं छीजे ॥
एक बार प्रभु नैननि निरखौं,
पद को माथ लगाऊँ ।
हिय मै राखूँ स्वामी को, मन
मैं, जग जननी ध्याऊँ ॥
सुन्यो प्रतिज्ञा प्रेयसि को शिर
युवराज किंयो नीचै ।
बोल्यो बचन गंभीर शोक मैं,
उन राजन कै बीचै ॥
"सत्य प्रतिज्ञ राम हो साक्षी,
ब्रह्मचर्य मैं धारूँ ।
व्याह करूँ नहिं मै जीवन भर,
प्रेयसि नहीं बिसारूँ ॥

सिद्धान्त प्रेम के जटिल युद्ध
मेँ सिद्धान्त बली है।
सिद्धान्त ध्येय है पुरुषों का,
प्रेम ध्येय नारी है॥
दोनों पृथक हुए जीवन में,
विधना की गति ऐसी।
आज प्रतिज्ञावश हम दोनों,
जीवन ऐसी तैसी।।"

भावी

भावी भावी जग को विधना,
करै वहै जो भावै।
बड़े बड़े पंडित मुनि के सब,
ज्ञान विफल ह्वै जावै॥
भावी बड़ो प्रबल या जग में,
मर्कट सबै बनातो।
नाच नचातो खेल दिखातो,
बुद्धि बड़न भरमातो॥
भावी बल मोहित ह्वै कीनो,
राम विवासन सीता।
अग्नि परिच्छा भूली उनने,
यद्यपि शास्त्र अधीता॥
दैत्य गुरू कै तरजत बरजत,
दैत्य राज नहिं मानो।
संकल्प्यो बामन हि त्रिपद भू,
छल को नहि पहचानो॥

हेलि हितैषी वचन वीर वर,
सब कौरव कुल राजा।
प्रलयकरी भारत क्षत्रिन को,
सैन्य सबल दल साजा॥

पृथिवि राज को अभय दानई,
भारत भाग्य नसायो।
कियो विमुक्त दुष्ट गोरी को,
द्वेषिन देस बसायो॥

सो भावी सब बुद्धि नसावत,
पलटि देइ जन वृत्ती।
गारत करि कहुँ कहूँ बिगारत,
नवल उठावत भित्ती॥

सोइ भावी के हेर फेर मैं,
दोऊ राजा देखो।
दोऊ प्रणयी बालन को प्रण,
कै विधि-लेख अलेखो॥

उलटि दियो मनसूबे जेते,
वंश हीनता भावी।
ज्ञान शून्य दोऊ नृप बैठे,
मनौ गरल तैं दावी॥

देखत रहे सुवन को करतब,
जिमि नाटक की लीला।
दोउ राज्यन के दोऊ ठेकत,
रहे भाग्य पै कीला॥

"जा कर को स्वामी नै त्यागो,
कंकन ! तुमहू त्यागो ।
हे कुंडल ! कमनीय कान तजि,
निजी भाड तुम भागो ॥

रे मुक्तामाला ! मनभावनि,
विरहिन सॅग का पैहे ।
विरहानल मे फूटि फूटि कै,
चूर चूर है जैहै ॥
त्यागौ आभूषन ! तन है है,
तापस वेशाधारी ।
तन त्राता स्वामी तजि दीन्ह्यो,
तजे यथा व्यभिचारी ॥
साडी बिना प्रयोजन तन पै,
त्यों ही शाल दुशाला ।
फटो चीर चाहै अब तन पै,
गुदरी अरु कर माला ॥"
यहि प्रकार सिसकति युवरानी,
परदो तजि कै आयी ।
परसि पद्म-पद पति को दरसन,
अन्तिम लैन विदायी ॥

अंजलि लोचन पुट करि उनके,
आँसुन सो पद धोये ।
केश कुसुम लै चरण चढाये,
सुमन कराजलि गोये ॥
आज्ञा माँगन पूज्य पिता तैं,
लपटि चरन वह बोली ।

याते तुम्हारी लली चली अब,
तप हित बन को भोली ॥
जीवन-धन सों त्यक्ता के हित,
कानन एक सहारो ।
तप करि लहौं वहीं जाको तब,
जीवन सारथ सारो ॥
प्रिय चरनन पूजा हिय मैं करि
जनम सफल करि पाऊँ ।
सिरज आसिस यौं देहु पिता प्रिय,
सफल मनोरथ ध्याऊँ ॥
यों सुनि पिता अचेत भयो तब,
कढ़ी न मुख कछु बानी ।
कै प्रनाम भरि नैन उन्हैं लखि,
बन जेवे की ठानी ॥
सखी सयानी पाछे पाछे,
बहुत गई समुझाई ।
एक न मान्यौ विधुर बाम नै,
विपिन ओर वह धाई ॥

विप्रलंभ शृङ्गार

लल्ली लल्ली पिता पुकार्यो,
जब कछु सज्ञा आई ।
धरनि गिर्यो निश्चेष्ट तबै जब,
बन्दी कथा सुनाई ॥
शयनागार उठाय उन्हैं तब,
परिजन उन पहुँचाई ।

नयनन नीर झरत अविरल पै,
संज्ञा रंच न आई ॥
दीरघ श्वास कबहुँ लेतो वै,
लल्ली कबहुँ बुलावैं।
कबहुँ होत गत जीवन जैसे,
कबहूँ अश्रु बहावैं ॥
चारिक द्वैक घरी बीते तब,
चेष्टा विनको आई।
भयो बावरो धावत इत उत,
लली लली गुहराई ॥
जाय पलंग ढिग ताके कबहूँ,
ताको टेरि जगावैं।
गिरत अचेत अवनि पै चादर,
टारि लखै नहिं पावैं ॥
कबहुँ हँसत बतरात कबहुँ बहु,
जनु तनया तँह ठाढ़ी।
देत खिलौना खेलन को अस,
बुद्धि हीनता बाढ़ी ॥
माता तव बैकुण्ठ गईं तब,
आपुन दै प्रतिरूपा।
तुम ही हो मम जीवन आसा,
सरवन बाल स्वरूपा ॥
आवहु बैठहु तुमहिं बतावैं,
राज आय को ब्यौरा।
नित राखत जो नृपति आय को,
अपने कर मैं डोरा ॥

रहत कोप को कुशल तबै लौं,
राज्य सुसम्पति वारी।
भागि गई! बिनु समुझो बूझो,
नन्हीं अबै बिचारी॥
खेलौ जाय सखिन संग तुमको,
बडे भये समर्थ हैं।
राज्य भार सब सौंपि तुम्हैं तब,
बान-प्रस्थ हम लेहैं॥
कबहूँ राजन को वह कोसत,
क्यों बन्दी उन कीनो।
सुन्दर वीर महा कोशल सुत,
कुटिल नीति नहिं भीनो॥
व्यर्थ विपति वैदिश पै लाये,
कोशल पति अब ऐहैं।
सेना लै विध्वंस करन को,
व्यर्थ समर अब ह्वै हैं॥
पश्चा शून्य कबहुँ ह्वै जावें,
उठें कहत पुनि लल्ली।
लल्ली प्यारी लल्ली आओ,
तुम मम आशाबल्ली॥
कहाँ गई क्यो रूठ गई वह,
पूछौ तुरत बुलावौ।
कहौ पिता तुम दर्शन चाहें,
एक बार तो आवौ॥
जावौ कहौ होयगी दशरथ,
की गति निश्चय मेरो।

ऐहौ भली होय ना, जा व्रत,
सफल होय अब तेरो ॥
व्याह करौ कोशलकुमार सों,
जीवन सुख तुम पावो।
धावौ धावौ धीर धनुर्धर,
रथ में सत्वर धावो ॥
मालू लल्ली को है पकरे,
तुरत मारि तेहि लावौ।
जावौ जावौ वेगि नहीं तौ,
ताहि न जीवित पावौ ॥
हमही जैहैं तुरत वेगि अब,
कहत उठे महराजा।
अरनराइ झुकि गिरो धरनि पै,
तन्त्रहीन जनु बाजा ॥
विटप प्रभजन पातित मानौ,
धरनि अचेत परे हैं।
राज वैद लखि नारी जान्यो,
चिन्ता चेत हरे हैं ॥
कह्यो राज परिचारक उननै
भले जतन सुठि कीजै।
चिन्ता चूर चित्त इनको है,
प्रथम सान्त्वना दीजै ॥
सखा आने पै इनसों सब,
करनो वार्ता ऐसी।
रोदन करैं याहि औषधि अति,
भोजन इच्छा जैसी ॥

व्यजन आदि शीतल उपचारन,
सों सज्ञा आवैगी।
सोवत समय न महाराज को,
अगद दई जावैगी॥

धरो आयुधालय में आयुध,
इहाँ न इक रहि जावै।
आत्मघात हित आयुध जासो,
इनको कर नहिं पावै॥

भोजन जल फल बहुत सोधि अरु,
पेखौ और परेखो।
हो न विषशंका, सह भोजन
करो यही विधि देखौ॥

मुक्ता स्वर्ण प्रवाल सुगुध दै,
कीजै त्रिविध बयारी।
केतकि कमल गुलाब सलिल सो,
सीचिय सीस सँभारी॥

ठंढाई शीतल मिश्री युत,
पयस्वनी - पय प्यावौ।
चेत भये भगवद्गीता को,
गायन मधुर सुनावौ॥

पढि पुरान पडित पुरान मिलि,
धीरज इन्हैं धरावैं।
श्री मगलायतन को सुतकर,
कीर्तन करैं करावै॥

हमहू हैं समीप गृह ही मैं,
बात नई कुछ होवै।

सूचित करो तुरत विधि बूझौ,
समय न कोऊ खोवै ॥
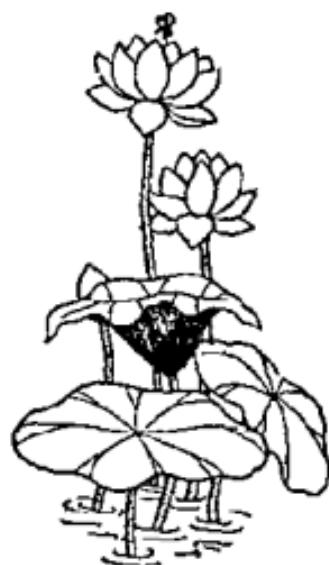
पच एक लौं रहे करन्धम,
उनकी प्रत्याशा में।
नृप उन्माद अवस्था के कछु,
सुधरन अभिलाषा में ॥
लखि न सुधार कह्यो वैदिश के,
मन्त्री को समुझाई।
राज काज को विषय मन्त्रणा,
राजा हितहि बुझाई ॥
अब जाते हैं कोशलपुर को,
अच्छे हों जब राजा।
संदेश भेजना हमको तुम,
अति विशिष्ट तव काजा ॥
जब तब दूत भेजते रहना,
हमहुँ सचेष्ट रहेंगे।
देख रेख युवरानी करना,
हम भी फिर आवेंगे ॥
चले करन्धम पुनि कौशल को,
ले निज सेना सारी।
चित्त वृत्ति वैदिश वृत्तनि सों,
चिन्तित रहे विचारी ॥

बहु समुझाय बुझाय जतन करि,
युवराज हि सग लीन्हो ।
चले लौटि कोशल को पितु की,
आयसु मे चित दीन्हो ॥

दोहा

नगर विविध विधि लसत सज, कोशलपति युवराज।
उनमन चिन्तित दुरित अति पहुँचो ले सब साज ॥

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

किमिच्छक व्रत

ज्येष्ठ वर्णन

रुचिरा छंद

प्रलय काल सा महावेग,
सों धूसर धूरि उठावत है।
शुष्क तृणन को वार करत,
वह हिम राकस पर धावत है॥
दुरत दुरत पै जुरत जात,
भागे हिम दल सब हिम गिरि को।
अट्टाटहास मारुत मिस,
कीन्हो देखि पलायन अरि को॥
विजय पताका तुरत उठ्यो,
उत्तुंग बवंडर को मही मैं।
सम्राट ज्येष्ठ को गौरव,
सुरपति को है ज्यों सुरपुर मैं॥
सेनापति सूरज नै सर—
संधान कियो तापन सबको।
जारन लग्यो जलधि जल को,
जलचर जन जंगल जलधर को॥
वन उपवन तरु सूखन लागे,
झरै न नग निर्झर माला।

सींचत माली जात जरे,
तरु आलबाल बरसे ज्वाला ॥
छोटी पूँजीवत पल्वल,
जिमि पेट सलाये भूखन सों।
कूप कृपण हैं नीर छिपावत,
जिमि नारी तन उघरन सों ॥
जन सर जल सरपत तन सों,
यथा प्रना कर अनमन कर सा।
आतप तपन तपस्या को,
कृषि जन करतो श्रद्धा मन सों ॥
सींचत सूखत ईख खेत,
तजि लूह लागिवे कै डर को।
ईख मान हरियारी प्रतिनिधि
सूखे खेतन उर्वर को ॥
त्यागत मुरसे पात विटप,
सब पल्लव नव ले उद्यत हैं।
जेठ राज सो असहयोग,
करिवे को तरुजन प्रस्तुत हैं ॥
नागी दल इक वर्गी प्रबल,
धनिक अमीरन अरु उमरन को।
खसखानन म रहत छुपे,
जो हैं अविदित दिनकर-चर को ॥
कोऊ जाय हिमाद्रि शृग,
पे देत चुनौती आतप को।
हिम स्वराज्य के वासी हम,
मानें नहि तुमरे शासन को ॥

एकहि दीपन वस्तुनि पै,
  है होत भिन्न उद्दीपन को।
जो आतप जग को जारत,
  सानुकूल अत ही कोउन को॥
चम्पा गहगहाय विकसित,
  है झाँकत पीत प्रसूनन सों।
अमिलतास पीताम्बर को
  लहि लागत हरि-परिषद-गन सों॥
नवल निवाडी के प्रसून,
  जनु है व्यजन-नाग दन्तिन को।
अलबेला बेला मानो,
  है बेंचत कुडल मुक्तन को।
रजनी गधा गधीगर,
  जनु खडो दिखावत गधन को॥
छोटी भानुमुखी नैंचत,
  है जनु पुष्पचिन्ह पूपन को।
लहलहाय लोनी प्याला,
  लै मोदक ग्डी कलारिन सी॥
छकने जाको चलो भीर
  भौरन की तित नहवैयन सी।
चपक सेन कलश मगल
  को विजयी ज्येष्ट दिखावत है।
आतिथेय पै प्रसन्न अति,
  महुआ फल खूब अगावत है॥

ऐसो मास तपस्वी मैं,
रानी वीरा है कोशल की।
खड़ी अवीक्षित के कमरे
मैं पूछति है सम्मति सुत की॥
राखि चिबुक पै कर कनिष्ठिका,
कहति लला सुनि यों हमसों।
लला दुलारे भला कहौ,
करिहो हम जो कहिं हैं तुम सों॥
करी याचना कबहुँ न तुम
सों आजु याचिवे कौ आई।
पैवे की आशा पूरी,
लै अभिलाषा उर धरि लाई॥
"कहो शीघ्र हे जननि,
कालपर्यय से नहीं प्रयोजन है।
तन मन धन मेरा तेरा,
है तव पद पर सब अर्पन है॥"
"कठिन किमिच्छिक समुपवास,
पितु आयुस लैकै करन चहौं।
करौ समर्थन तुम हूँ तब,
व्रत मैं यह अति दुःसाध्य लहौं॥
सिद्धि समृद्ध सबै अति ह्वै,
है विश्वविजय छन मै करि हौ।
तृप्त पितर आसिस दै हैं,
निज मातु पिता को दुख हरि हौ॥"
"व्यर्थ प्रलोभन है सब,
जननी प्यारी का आदेश हमें।

स्वीकार हर्ष से हमको,
चाहे हो कष्ट महा इसमें ॥
मात पिता का हौंस पूरना,
सुत का है कर्त्तव्य यही।
वही करेंगे तन मन से,
मानें मेरी यह बात सही॥
चले करें चित चाही हो,
हर्षित न अधिक विचार करें।
आयोजन का मेरे सिर
पर सकल कार्य का भार धरें॥
मातु मुदित मन चूमि पूत,
मुख सुख सों आसिस वचन कहे।
तुम पावौ व्रत का फल ओ,
जननी नाती लहि मोद लहे॥

व्रतारम्भ

अनुष्ठान - व्रत समाचार,
वितरित है जनपद ग्रामन में।
प्रजा चली अर्पन करिवे,
को लये फूल फल पूजन मैं॥
विशद वितान तले विधि सब,
गणपति लक्ष्मी सस्थापन कै।
व्रतारम्भ कीन्ह्यो वीरा,
विधिवत देवार्चन जापन कै॥
क्षौम दुकूल त्यागि रानी,
लै सादी अम्बर ग्रहन कियो।

सुखद महल की त्यागि सेज,
कुटिया मैं जाय निवास लियो ॥
सुवरन पात्र विहाय परन,
कै सुपरन पातरि दोन लियो ।
दीन मनौ नारी द्विज को,
वा दुखद काठ को खाट लियो ॥
कूप सलिल तजि नित अन्हान,
हित जाति प्रभात होत सर मैं ।
धोवति आपु दुकूल कूल,
पै लौटति घट लै तृण-घर मैं ॥
कमल निवासिनि कौ निशि दिन,
सुमिरति माता चित चाव किये ।
पूजि वेल दल हवन करति,
नित पयाहारनी भाव लिये ॥
रमा सूक्त पारायण नित,
प्रति सहस कमल नीराजन को ।
करहि चाव चित दीन भाव,
सौं दीने चरनन मैं मन को ॥
दुपद दुग्गारी सरिस खोलि,
हिय विनवै आरत वचन कहै ।
उरझि समस्या परी सके,
सो सुरझि मातु जौ नेक चहै ॥
जननि रावरी सी तजि ताको,
भक्त तिहारो जाय कहाँ ।
काको जाँचै दया इती,
है काके एती मया यहाँ ॥

पौत्र बीरवर होय कीर्ति-
कर तनिक दया की दृष्टि करौ।
भावी कुल छय सों क्लेषित,
पति पै करुना की दृष्टि करौ॥

पाप कियो कत्र बूझि परै,
नहिं हिय मैं सोचि सोचि हारे।
और न कहूँ सरन जननी,
अन तजि बस श्री चरन तिहारे॥

काटौ कठिन करम फल माँ,
नाती दै मेरी गोद भरौ।
दारुन दीना दुखिया अति,
निज दासी के मन मोद भरौ॥

जननि सुनौ या सुता परन,
मै और काउ को नाहिं भजैं।
द्वार जाय काके तनुजा,
जाकी माता ही याहि तजैं॥

❀

परम नियम व्रत पालन को,
जा घोषित मागध सूत कियो।
पूजनान्त नित जो जो मागै,
सो सो ताको जात दियो॥

नित्य धरनि, धन, पट वितरन,
सौं भे अयाच्य याचक सबही।

दूर दूर तें बहु आये,
जे पूरन काम गये तब ही ॥
कहि न जाय कैसो रान्यो,
घन खोलि रतन आगर मानों ।
किते भरे घट घटै न पूरित,
होतो रत्नाकर जानो ॥

(३)

पालन नित्य नियम ऐसे,
व्रत, द्विगुन दिवस दस बीत चले ।
आयो अन्तिम दिवस इती,
उत मानव रेला रेल रले ॥

दोहा

बन्दी बोल्यो चहकि कै, भूगे मख्ये व्रत ।
माँगो ईप्सित जो हृदय, व्रत का होता अत ॥
सुन्यो वररूप घोषणा, हिय प्रसन्न मुसुकात ।
राज द्वार पै आइकै, खड़ो अविजित तात ॥
"जो मांगै वह देयगे, बन्दी बच यदि सत्य।"
अति सगर्व बोल्यो तुरत, कौशलराज अपत्य ॥
"जो कुछ है सब आप का, कहिये सोच विचार ।"
सुत तन मे जो हो सबै, सो अवश्य इस बार ॥"

भिक्षुक सम अति दीन है, माग्यो वर वह एक।
"तव तन से जो हो सकै, राखूँगा तब टेक॥
पौत्र एक हमको मिले, सूना कोशल धाम।
अकाला यह सून्य है, पुष्प विना आराम॥

सूना राज्य भविष्य है, सूना कोशल वंस।
सूनी मन की कामना, हे मेरे अवतंस॥
सूना पिण्डोदक क्रिया, सूना राज्य महान।
आगे रक्खो शून्य के, पौत्र एक सज्ञान॥

पद्म शंख तब शून्य हो, अगणित हो सुख साज।
प्रजा मातु पितु तुम हो, प्रमुदित है युवराज॥"
रह्यो ठग्यो सों सुनि वचन, देवव्रत कुमारग गौन।
दुविधि दर्श मति मौन रहि लखति गहिय पथ कौन॥

"पूज्य चरण हो जानते, मेरी शपथ महान।
ब्रह्मचर्य व्रत का सदा, तन मन रहता ध्यान॥
कठिन किमिच्छक नियम यह, पूरन करना माँग।
बिन समझे स्वीकृत किया, पीली थी क्या भाँग॥

धर्म उदधि में घोर अति, विप्लव यह साकार।
शपथ उडप का डूबना, होगा व्रत मझधार॥
रक्षक हा भक्षक बने, शपथ दीन कहँ जाय।
धर्म राज प्रगटो तुरत, दीनहिं लेव बचाय॥

बलिपशु सम तो सत्य है, बधिक जनक मम आज।
दोउ प्रन कैसे पालिये, कैसे रखिये लाज॥
ब्रह्मचर्य त्यागै शपथ, भामिनि प्रति अन्याय।
तपति तपस्विनि विपिन तप, सहि सहि दुख समुदाय॥
कहँ तति जब सुनेगी, कोशलसुत का कृत्य।
जिनके हित तप तप रही, ध्यान लगाये नित्य॥

जीवन उसका नष्ट कर, किया कष्टकर पाप।
ब्रह्मचर्य व्रत त्यागना, होय पाप पर पाप ॥
पड़ा धर्म सकट विस्ट, हठफल मिला महान।
छोड़ स्वरध ग्रर सत्य पथ, पालन का न विधान ॥"

आत्म घात की बात सुनि, बोलि उठे महराज।
शिव ! शिव ! कुवचन यह महा, कहो महा तुम आज॥
व्रत उद्यापन दिवस यह, महा पुण्य का काल।
सकट धर्म अवश्य है, रखो धीर हे लाल ॥

सत्य धर्म का मूल है, सच यह निस्सन्देह।
धर्म न होता तन बिना, त्याज्य न इससे देह ॥
मातु पिता प्रति सत्य जो, परम प्रतिष्ठित लाल।
महा धर्म है पुत्र का, महा पुण्य यह काल ॥

'धर्मस्य सूक्ष्मा गति' कहते हैं स्मृतिकार।
धर्म तत्त्व गह्वर निहित, सोचो करो विचार ॥
करना कौन विधेय है, चिन्तनीय यह काल।
भामिनि औ मां प्रति युगुल, सत्य साध्य नहि लाल ॥

धर्म पाश से जननि को, मुक्त कराना श्रेय।
स्वीकृति दो मम याचना, हो व्रत नियम विधेय ॥
जब दोना व्रत पालना, साध्य नहीं युवराज।
त्याज्य कौन यह सोच कर, व्रत की रक्खो लाज ॥

व्याह भामिनी से करो, पूर्ण काम हो चित्त।
किये अन्यथा प्राण वह, देगी व्याकुल चित्त ॥
भामिनि जीवन भी रहे, सफल जननि व्रत साथ।
देव पितर आशीष दें, लगे सुवन भी हाथ ॥"

"सत्य त्याग कर सत्य का, पालन धर्म विधेय।
सुनि तात ! यह कौन सी, न अल्प बुद्धि सुगेय ॥

कुंडलिया

यह निदेश शिरधार्य है, पौत्र दान सकल्प।
जननी व्रत परिपूर्ण हो, मैं अयशी अाकल्प ॥
मैं अयशी आकल्प, अल्पमति कहैं मुझे जन।
छोड सत्य निर्वाह, लिया भौतिक सुख जीवन ॥
हो सकते सब नहीं, देवव्रत से सत्यावह।
अविवाहित रह, पूर्ण बिताया था जीवन यह ॥

ॐ

दोहा

सुखम्वाद सुनि मातु उत, हिय आई हरखान।
जनु सुत-उडपति परस हित, उमड्यो उदधि महान ॥
सुत स्नेही को अक भरि, आसुनि सौं भरे नैन।
हिय अमद आनँद भरो, मुख नहि आवत बैन ॥
ब्रह्मचर्य-नारद रहित, भयो सनेहाकास।
छिटकी छवि सुख चद की, माता प्रेम प्रकास ॥
ब्रह्मचर्य-कटक कुटिल, करकत करत उदास।
उनके हिय तै कढि गयो, माता भरी उलास ॥
जो शपथातप ताप सौं, आशा पौत्र सुखान।
पौत्र प्रतिज्ञा-धन-घुमडि, आस सोइ हरिआन ॥
पौत्र निरामा उदधि में, बूडत जीवन नाव।
कियो प्रतिज्ञा ताहि कौ, मानौ पूर बचाव ॥

कवि ह्वैवे की हौस मैं, काव्य नियम तजि छंद।
तथा वंस विसतार हित, तजे नियम के बन्द ॥
साहित्यिक जीवन यथा, बिनु धन होत निरास।
आरांका कुल नाम को, मुदमय जीवन नास ॥

जलहरण घनाक्षरी

नन्दिनी सौ आसिस लै कौसल को लौटे जिमि,
नृपति दिलीप सुत आसा सौं मुदित मन ॥
आसित्त तुषार जानौ, हैम अन्तर पद्मिनी
प्रफुलित भरी मोद नव निखारि पातन ॥
हस्त की सुवृष्टि पाय सूखत रहे निरास,
लहरान लागे हरियाय धान जडहन ॥
नृपति करन्यम त्यौं महरानी बीरा अति,
सुत आस सौं मुदित राज्य के सुप्रजागन ॥

बारहवाँ सर्ग समाप्त

तेरहवाँ सर्ग

भामिनि की तपस्या

विरह शृंगार

राग धनाश्री ॥

हिय तन्त्री बस बाजन जावै।
विरह तान तव परम अचल है,
उन हिय तें नहिं जावै।
विकल कियो उनके नहिं हिय को,
यामें का फल पावै॥
मंत्र शक्ति तो सब जग जानत,
इष्ट देव पहुँचावै।
तू अबला हिय यामें निर्बल,
विह्वल अति ह्वै जावै॥
निर्बल को नहिं कछुक प्रयोजन,
सम ह्वै जो मति भावै॥
तार खैंचि टूटो हियतंत्री,
विरह महा स्वर आवै॥
प्लावन करी पवन उन कानन,
प्रेम संदेस सुनावै।

उनमें करि प्रवेस हियतंत्री,
विरही तान बजावो ॥
भामिनि भामिनि सुर हिय निकसै,
ढूँढ़त भामिनि आवैं।
एक बार उनको दरसन कै,
जीवन फल सुख पावै ॥

चौपाई

जाओ प्राणनाथ मतिमानी।
प्रेमकथा तुमने कुत जानी ॥
वैन हीन प्रेमी होवै है।
मति को वा हिय में खोवै है ॥
देखत नहि अवगुन प्रियतम में।
निर्गुन गुन लेखति दुति तम में ॥
एकहि तो तुम में अवगुन है।
प्रेम मूल नहि जानत मन है ॥
प्रेम करत हू भामिनि त्यागे।
दासी तुमरे पद अनुरागे ॥
पत्र फूल फल जो जहँ पावै।
अरपि तुम्हें सिसकति नित खावै ॥
कबहूँ निराहार दिन बितवति।
तुमरी सुधि करि तनमन रितवति ॥
जो न स्वामि चरनाम्बुज पाये।
पद परसित थल रज सिर लाये ॥

गहन विपिन यह है स्वामी का।
मृगया थल केहरि गामी को ॥
आये अवसि होइहै यहि नन।
भाजत समय लखत हरिनी गन ॥
हय पद इत उत चिह्न दिखातो।
बाणन के बहु वार दिखातो ॥
यहीं हमारो वृन्दावन है।
यहीं हमारो सौख्य सदन है ॥
याही की प्रिय कुटिल कांँकरी।
इहैं हमारी खोरि साँकरी ॥
भरमत भलो मिलो प्रिय को वन।
सफल भयो हमरो तीर्थाटन ॥
कौन कहै आखेटन करतो।
प्रान नाथ आवै या दिक्‌तो ॥
नहीं जानि सकि है प्रणयिन को।
हीन मलीन दीन तपसिन को ॥
हानि कहा जो वै नहि जनि हैं।
हमतौ निज नाथ हि पहिचनि हैं ॥
जीवन हीन सुजीवन पइ हैं।
लोचन विफल सफल ह्वै जइ हैं ॥
आवहिं करत अहेर पिया से।
पावन होइ हैं कुटी पियासे ॥
शबरी सम शीतल जल देहौं।
पाँव परसि जीवन फल लेहौं ॥
कुसल छेम पूँछहिं जो मेरो।
गहौं मौन नहिं जाय निवेरो ॥

परखौं प्रान नाथ मन रीती।
भामिनि मैं का अब हूँ प्रीती ॥
पुछिहौं कुशल रावरी रानी।
कहौं आप कित के नृप मानी ॥
लट बिसरी रखिहौं मुख ऊपर।
जानि सकै नहि भामिनि भीतर ॥
यहि विचारि कै कुटी बनायी।
जग माता मूरति बैठायी ॥
पूजन करौं मातु चरनन की।
होवै सफल आस दरसन की ॥

दोहा

शबरी सम आसा भरी परी पीय कै प्रेम।
सफरी सम तरफत रही जोवति मग करि नेम ॥
भक्ति सहित पूजति रहति जग जननी की मूर्ति।
करि बिसास करि कै कृपा करि हैं आसा पूर्ति ॥
रोचति गूँथति माल मृदु पूजन हित करि नेम।
पूजन करि कीर्तन करति धरे भक्ति अरु नेम ॥
रहत ताहि एकान्त तहँ बीते केतिक काल।
कन्द मूल फल फूल पै बितवति बासर बाल ॥
कोल भील बनचर तहाँ ता कहँ देवी जानि।
बन्य भोज्य प्रस्तुत करैं अस्तुति करि सनमानि ॥

भाद्र पद वर्णन

भादौ अन्न भभकाय करि, लग्यो गिरावन नीर।
जानि परत नभ पै विजय, कियो उदधि अति वीर ॥
विजयपताको तडित को, उच्छ्रित कै नभ माहि।
घन गर्जन जनु वाद्य है, दगि दगि सतत सुनाहि ॥
नभ थल आवागमन को, सुगमकरन सब ठौर।
वारि सडक घन राज नै, विधिवत रचत सुपौर ॥
चमकि चला सफरी सबै, सेलाना पथ पाय।
क्रूर बकन की बनि परी, धामत नहीं अगायँ ॥
त्राहि ! त्राहि ! जग जनन की, सुनि कै उदाध उदार।
सर सरिता सासन कियो, जल कौ करौ निसार ॥
जल ही जल मैं निर्जला, विन अहार अति दीन।
बैठि कुटी मैं भामिनि, विनवति मातु अधीन ॥

चौपाइ

तान मास विरवत मोहि बीतो।
आतप ताप काहु विधि नीतो ॥
अबतो घरि घुमरि घन बरसत।
छपरो कुग्यिा चहूँ दिसि टपकत ॥
एकाकी बन मैं हिय डरपत।
नभ म घटा घनी है गरजत ॥
थल पै सिंह व्याघ्र बहु तरपत।
व्याल दान दादुर को हडपत ॥

बार बार है बिजुरी कड़कत।
बार बार हिय डर सों धड़कत॥
पगडण्डी सरिता सम सरपत।
ब्याल निकसि बिल तें है भरमत॥
नभथल जल ही जल जल प्रसरत।
भोर भये भानु हु नहि लखियत॥
पापी प्रान कढ़त नहिं काढे।
अनमन रहत बहुत दिन बाढे॥
प्रेम सृष्टि हित तुमने कीनो।
बिनु प्रेमा के असफल जीनो॥
कहु जगदम्बा हे जग जननी।
कहा चलुप किय किंकरि करनी॥
बोलौ माँ बोलो जग रानी।
तुम न ऊबयो सुनत कहानी॥
कहौ कहा माँगनि मं अनुचित।
धर्म कर्म प्रतिकूल न मति गति॥
लोक विरुद्ध असुद्ध न यामें।
न्याय असंगत मत नहि तामें॥
कहौ जननि-वर जग बरदानी।
कहा करौ तुम आनाकानी॥
हिय सों है एकहि सुर निकसत।
हिय स्रोतनि एकहि रस सरसत॥
मन ध्यावत चिन्तत एकहि कौ।
जियौ धरे आसा नेकहि कौ॥
जौ वे पद पुनीत नहिं पैहौं।
पामर प्रान तुरत तजि दैहौं॥

जननि हियो तब है करुनोदधि।
मेरो हित सो कम सिकता निधि ॥
उन परित्याग प्रिया जिमि कीन्ही।
तिम तनुजा तुमहू तजि दीन्ही ॥

तजो प्रान जेहि सब तजि दीने।
जननी, जग जननी, प्रणयीने ॥
तज्यो मोह मेरे जीवन को।
यौवन लास्य तज्यो मम तन को ॥

नहि आसा का सुखदा स्मृतियाँ।
कलित काम की कल्पित कृतियाँ ॥
मधुमय जीवन गरल भया अब।
मधुमय घड़ी कबी बिसरी अब ॥

अब जीवन सों कौन प्रयोजन।
जौ नहि जीवन सुख आयोजन ॥
ध्येय मुक्ति भव मुक्ति न मेरी।
चरन चहौं दासी पद केरी ॥

लभ्य न वे बिनु तव सदनुग्रह।
देहु आश तुम नहि तव विग्रह ॥
विफल करौ नहि यदि क्रूर ग्रह।
हाहि नहों प्रिय सों पाणिग्रह ॥

विरह ग्राह ग्राही जीवन को।
॥ अब तजि देहौं मैं यहि तन का ॥
प्राननाथ जनि है यह गाथा।
' रोवहि धाइ धरनि धरि माथा ॥
पै भामिनि को फेरि न पैहो।
लैहौ तन वह बरामे वितैहौ ॥

प्रान नाथ अवला सुकुमारी।
आशा हत जीवन भो भारी॥
सहन शक्ति तजि हमहिं सिधारी।
अब तन तजिबे की तैयारी॥
करि प्रनाम प्रेयसी तुमारी।
सुमिरत तुहिं जाती तुव प्यारी॥

सोरठा

रज्जु प्रवल को फाँस, प्रान तजन हित निरम्यो।
आत्मघात करि नास, आसा हत को सरल पथ॥

चौपाई

श्वेत केश किरिनन लो राजे।
दंड कमंडलु कर मैं साजे॥
शान्त रूप शिवसम शिव भासत।
होत तहै शिव जहँ दग रासत॥
शंकर प्रगट भये जनु छन मैं।
भामिनि ज्यों रत आत्म हनन मैं॥
"सावधान! यह कहा करति है।
रिधि विरंची विधि नहीं टरति है॥
भावी कहा नही तू जानै।
महा पाप करिबे की ठानै॥

है है तव सुत महा प्रतापी।
अपःशकु तरुनित जो पापी॥

निज बल पौरुष सों तिन सोखै।
जोग जग्य सौं देवन तोखै॥
उपकृत जग हृ है शासन सों।
पितर होय तोषित तरपन सों॥

मंगल मय हो वन सब जनपद।
दुष्ट दुराचारी करि निर्मद॥
वर्ण व्यवस्था को प्रति पालक।
धरम धुरीन होय तव बालक॥

धैर्य धरो बाला कल्याणी।
ह्वै हैं उपकृत भारत प्राणी॥
तप प्रसन्न देवी रुचि राँची।
कह्यो कही होइहै मन साँची॥

दोहा

आयो प्राण बहुरि मनौ, यम फाँसी तें छूटि।
गिरी जाय उन चरन पै, लागी रोवन फूटि॥
असरन को माता दियो, सरन दया अति कीन।
भेज्यौ जो श्री चरण को, प्रान बचावन दीन॥
ताको मुनि अति स्नेह करि, लियो धरनितें गोद।
मिटी निरासा परस लहि, भयो हाव मन मोद॥
अर्घ्य पाद्य दीन्यो तुरत, कन्द मूल फल लाइ।
करी सपर्या सविधि सब, मुनि को माथ नवाइ॥

चौपाई

बोली पुनि आशा हत बानी।
तजि लज्जा अबला मतिमानी ॥
मुनिवर उन तौ यौं प्रन ठान्यो।
हमै अजोग ब्याह हित मान्यो ॥
किमि अब यहाँ आन कर जाई।
लियो उनहिं जब मै अपनाई ॥
सुरझै कैसो कठिन समस्या।
तुम जानहु जो मोहिं अपस्या ॥
बिहँसि बचन बोले मुनि ज्ञानी।
है है सोइ जोइ उर आनी ॥
है है कैसो हिय जौ चिन्ता।
छाड़ौ उन पर जो दुख हन्ता ॥
माता जानै भेज्यो हम कौं।
टारत भगत समस्या तम कौं ॥
रहौ भक्ति पूजन मैं तत्पर।
शेष दया हित उन पर निर्भर ॥
आशिष दै जय जगदम्बा जय।
कीर्तन करत भये बन मैं लय ॥

राग प्रभाती

भव भय हारिनि जगदा धारिनि
असुर संहारिनि जय जगदम्बे।
कलि कुल नासिनि दु:ख बिनासिनि
शुम्भ विघासिनि जय सुरवन्दे॥
विन्ध्य निवासिनि शस्त्रसुहासिनि
ब्रह्म विलासिनि जय दिवि वन्दे।
भक्ति विकासिनि दया प्रसारिनि
प्रजा सुपोखिनि जय मम अम्बे॥

छन्द गीतिका

दै चित सुनत जबलौं तनैलौं,
सुनि परी वह गीतिका।
सुनि ताहि भइ अकुरित आशा,
नवल जीवन मीतिका॥
ह्वै नभ नवल पल्लव नवल त्यों,
नवल हिय की वृत्तियाँ।
जागो नवल अनुराग जागी,
नवल सुख की कृत्तियाँ॥
मन मैं नवल मनसिज उठायो,
नवल जीवन यवनिका।
अब ह्वै गयो संसार नूतन,
विरह नष्ट विभीषिका॥

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

चौदहवाँ सर्ग

अभिसार

सार छंद

मृग मद मातो जिमि मृग ढूँढै,
सौरभ को नित बनबन।
सर सो सर सरसिज स्नेही अलि,
खोजै जिमि नलिनी गन॥
तृषित पथिक जिमि आर्त चहूँ दिश,
भरमत निरखन निर्झर।
कोक वियोग सोक सांकित निसि,
लेखत सरसी प्रति सर॥
कवि जन जिमि कल्पना कुंज में,
अनुपम उपमा देखत।
तिमि कोशल युवराज अवीक्षित,
बन बन भामिनि लेखत॥
आखेट व्याज सों कुसमय की,
निन कछु चिन्ता कीने।
घूमत ढूँढत खोजत नोवत,
भामिनि में मन दीने॥
कहाँ परी मेरी मन रानी,
तपसी वेष बनाये।

उमा अर्पणा सम होगी वह,
अविचल ध्यान लगाये ॥
इस नृशंस पापी पामर हित,
तपती तप को होगी।
राजमहल तज परन कुटी में,
भव विरक्त जनु जोगी ॥
कुम्हिलानी आतप तप से, अरु
सात सताई दीना।
वल्कल वसना फल फलासना,
कृसिता आशा हीना ॥
पीती पय पल्वल की दूषित,
व्याकुल जलहित होगी।
कृश कलेवरी विरस वल्लरी,
पीत वरन जनु रोगी।
हरण किया उसका सुख उत्सव,
मानौ थे विधना हम।
प्रेम किया निष्ठुर से है जो,
प्रेम रीति के अक्षम ॥
जीवित है वह यह आसका,
रह रह कर उपजै उर।
काम कामिनी सी सुभामिनी,
विरह न भेजा सुरपुर ॥
कौन कहै एकाकी वन मैं,
वन्यन की कवल बनी।
खाडव दहन दृश्य तत्र रच दूँ,
प्रसरित कर अनल अनी ॥

तीन मास से अगर अवीक्षित,
मृगया मिस घूम रहा।
याचक-शर-हित दान वन्य को,
देने में सूम रहा॥
शका थी कि फूल फल चुनती,
फिरती विकल विचारी।
कहीं भूल से मुझ पामर कर,
हो नहिं आहत प्यारी॥
पाप भाव! यह हो न सके कुछ,
वृत्ति विपत्ति विधायक।
मम निष्ठारत तपस्विनी की,
है जगजननि सहायक॥
रक्षा करते होंगे हिंसक,
भी उनको कुटिया की।
हरती होंगी मृगियाँ कौतुक,
कर पीडा दुखिया की॥
बड़े बड़े लोचन लख उसके,
जान यही माता है।
जाय गोद में बैठ विलोकत,
अब कुछ नहिं चिन्ता है॥
निम्बा घर उनके लख बुलबुल,
तज कर बुलबुलखाना।
आय सपदि अरु चहक चहक कर,
आवत उन्हें तराना॥
पढ़ित शुक कादम्बरि गाता,
कथा सुनाता होगा।

पद्मा जान पद्म ले करिनी,
वृन्द चढ़ाता होगा ॥
प्रात भुजगी 'ठाकुर' 'ठाकुर',
कीर्तन होगी गाती।
सामा दहियर तान सुरीली,
से होगी बहलाती ॥
कुहूँ कुहूँ कर रव कोकिल की,
होगी स्मरण दिलाती।
मुझ नृशंस प्रेमी का करतब,
जनु हिय अनी घुसाती ॥
बच रहा व्यर्थ अभिमानी,
नृपशर दारुण दापों से।
हा! जिससे प्रेयसि मेरी यह,
जलती सन्तापों से ॥
धिक्! मेरी जड़ता कुबुद्धि जो,
अज्ञानी अविसासी।
निश्छल प्रेयसि को ठुकराया,
प्रेम नीर की प्यासी ॥

सत्य और प्रेमी

सत्य प्रेम थे दोनों उसमें,
मुझमें सत्य अकेला।
विजित सत्य मेरा सेवक उसके
पद का प्रति वेला ॥

सत्य, प्रेम हैं सगे सहोदर,
किन्तु न साथी सहचर।
विश्व विजय प्रभु हुई चले यदि,
यह सहयोगी रहकर॥

होता है व्यवहारिक जग में,
नायक सत्य सुभ्राता।
कर्म विधायक भूपति रक्षक,
सब जन का सुख दाता॥

हृदय नियन्ता किन्तु प्रेम है,
जिसके वश जग स्वामी।
बिना प्रेम के सत्य बिचारा,
रहता निर्बल गामी॥

बस इसमें ही पराभूत हो,
मेरा सत्य उदासी।
प्रेम-हेम याचक हो भामिनि,
का हो चुका उपासी॥

सत्य प्रेम की प्रतिमा जो उस,
प्रेयसि को यदि पाऊँ॥
पद प्रक्षालन करूँ प्रेम से,
मानस मंच बिठाऊँ।

पाऊँ जो तपस्विनी प्रेयसि को,
तो मैं, तन मन वारूँ।
निज जीवन यात्रा में उसको,
यंत्र बना कर धारूँ॥

दोहा

यहि प्रकार मन मैं गुनत, धुनत आपना भाग।
सुनत शब्द अति आर्त वह, मनो स्वप्न सों जाग॥

सार छन्द

त्राण करो हे या अबला को,
विवशा साध्वी नारी।
त्राण करो या स्नुषा करन्धम,
आश्रय हीन विचारी॥
त्राण करो, कौशल सुत पत्नी,
हे दौरो सब बनचर।
बड़ो प्रबल यह दानव दौरो,
हरन करत यह निशिचर॥
हे दानव तुम निडर बहुत पै,
नहि कोशल सुत जानै।
अमरहु नहि सहि सकत बान उन,
नर सब लोहा मानै॥
किधौं काल को आयसु देतौ,
डरो नहीं तुम यमपुर।
धनुष धारि वै बनबन घूमत,
रच्छन दीनन आतुर॥
बड़े बली कौशल सुत तेरे,
बकती है तू बाला।

पार न पाते सुर दनु सुत से,
जब रण पग्ता पाला ॥
अल्प आयु निर्बल मानुष को,
मूषक हम सब मानत।
चूसक कृपिकन के धन तन को,
मृग मारन हैं जानत ॥
दुर्दुरूट दनु सुत दानव को,
देखि दुबकि देवन सब।
दबि गये दबाये हम को दे
दुनिया दानव को तब ॥
चलो हमारे मायापुर को,
देखो सब नगरी का।
मामा मायासुर निर्मित
जिसने महल युधीठिर का
निर्माण किया, विभ्रम कारी,
मायाविन सबहा को।
थल जल समझे दुर्योधन सब,
दीवारन ड्योढी का ॥
सुख करो जहाँ जो चाहो तुम,
हम हैं इच्छा पूरक।
इच्छा - मात्र हमारे करते,
हो जाता सब चक चक ॥
धक धक करना है औरों का,
करो जहाँ तक चाहो।
इच्छा से जो चली चलो तब,
मोगो जो इच्छा हो ॥

ले जावेंगे नहीं पकड़कर,
दानव नीति सदा से।
धीवर सा मछला लटकाये,
फँसी जाल के फाँसे॥"

"हे दानव ! भारत की ललना,
एक बार वरती हैं।
गुन औ अगुन नीच अरु ऊँचो,
ध्यान नहीं धरती हैं॥
बल करिहौ तौ मैं अबला पै,
सत्व अग्नि इक धारा।
भस्म करौं निज दावानल से,
देह तुम्हारा छारौ॥"

"चुप रहो बहुत बढ़ती जाती,
चलो साथ तुम मेरे।
तुम का रस्त मायापुर म मैं,
खोजूँ स्वामी तेरे॥"

"त्राण करो कोशल सुत ! दौरौ,
दौरौ स्वामी सत्वर।
स्नुषा करन्धम त्राण करो मम,
हरै दनुज यह दुर्धर॥

दोहा

सुनतहि दौरि परे उतै, जहँ तहँ आवत शब्द।
चीरत जगल चलो जिमि, चीरत चपला अब्द॥

शब्द बेध शर सों गयो, दुर्दुरूट जँहँ दुष्ट।
महाकाल सम उत खड्यो, देख्यो दानव रुष्ट॥

सार छन्द

भीम भयंकर भीषण भूधर,
राम अवतार भयानक।
केश जटिल साही काटे सम,
बिखरे शर सम बेधक॥
ग्रीवाँ उग्र नासिका चक्री,
निकसे दंष्ट्र क्रकच सम।
कुटिल क्रौर्य सों नेत्र विघूर्णित,
वीक्षण रौद्र विकटतम॥
भभर्‌यो नहिं भीषण दानव लखि,
पै ताडित जिमि फणपति।
तडपि सिंह सम तमतमाय करि,
बोल्यौ वह दानव प्रति॥
"अरे दुष्ट दानव दर्पी तूँ,
निर्दय अति अविचारी।
अनाचार अबला पर ऐसा,
करे निडर व्यभिचारी॥
छोड छोड नारी को अब तूँ,
नहीं बाण छोड़ूँ मैं।
फोड़ शत शिर तव बाणों से,
गर्व महा तोड़ूँ मैं॥

नीच निशाचर कोशल नारी,
के हरने का साहस।
डरता नहीं अवीक्षित सम्मुख,
तेरा काल महायस ॥"
"बहको मत ऐ अल्प प्राण तू,
दुर्दुरूट नहिं जानत।
गला घोंटि तेरा बटेर सम,
मारूँ देखत दागत ॥
परे मार जब समसेरन की,
भूलै अकी बकी।
चरवन करते दाँतन से ज्यों,
चना चबैना चक्की ॥
सिंह ग्रास सम यह नारी है,
तूँ बकरी क्या होडत।
पीठ फेरि भागो तुम ज्यों है,
हय अड़ियल मुख मोड़त ॥
प्राण मोह हो तुम को कुछ भी,
मातु पिता के नेही।
भागो भागो नहिं तो दनुसुत,
मडमडाय छन मे ही ॥"
"सँभलो शीघ्र अवीक्षित की है,
क्षमा शीलता जाती।
निकल तूण से वीर हाथ से,
शरानलाली आती ॥
ध्याले नीच जिसे ध्याना हो,
नहीं काल तव क्षण में।

कवल नवल सा तुझे करेगा,
पामर पापी रण में॥"

तोमर छन्द

तब दुर्दुरुट कराल। लै महा दंड विशाल॥
है कुपित मानौ काल। जनु व्यथित झपट्यौ व्याल॥
कोशल कुमार सुढार। कै तीक्ष्ण तीरन वार॥
दनु दंड कीन्यो खंड। दानव महा उदंड॥
उत्पाटि कै इक ताल। अति रोष आनन लाल॥
तब पट्यो दनुसुत टूट। जनु गयो भैंसा छूट॥
कोशल कुमार विशाल। संधान कै शर जाल॥
फाँस्यो सुदानव ग्राह। अब बचन को नहिं राह॥
वह दौरि कै अतिरुष्ट। लै भूधरन को दुष्ट॥
फेंकन लग्यो बहु जोर। भूकम्प जनु अति घोर॥
दृत कोशलेश कुमार। स्तम्भन कियो गिरि वार॥

करुण रस

दोहा

रही विचारी भामिनी, सुमकत परम अधीर।
कुंज छिपी देखत रही, ढारत नैनन नीर॥
निर्णय पे आयो अबै, जीवन प्रश्न अपार।
उत तौ हैं दानव महा, इत है मृदुल कुमार॥
मायावी यह विकट है, बल दर्पी गज काय।
राज कुँवर मम प्राण प्रिय, दुर्बल अति मृदुकाय॥
रहिहौं तपसी मैं सदा, बिनु मागन सिन्दूर।
किम्बा माता देयगी, निर्बल बल भरपूर॥

अबल सबल को युद्ध यह, अबला बिनवत तोहि।
अबल प्रबल करु मातु है, बल दात्री तूँ होहि॥
चंडी चंड पराक्रमी, चंड नाशिनी मुंड।
रक्तबीज निर्बीज कैं, शुम्भ निशुम्भनि रुंड॥
महिषासुर मद दलित कैं, नास्यो राक्षस झुंड।
जगदम्बा जगजननि है, दनु सुत तोड़ौ तुंड॥
लुंड मुंड धरनी गिरे, रुंड मुंड हैं दीन।
शुंड बिना जनु शुंडिनी, होवै प्राण विहीन॥
देखौ फेंकत भूधरनि, जिमि कंदुक की खेल।
प्राण बचै मम प्राण कस, है उँहैं पिस देल॥
मा! मा! मा! प्रगटो अबै, भूधर गिरे विशाल।
रोकि सकैं नहिं याहि अब, प्राणनाथ शरजाल॥
धनि माया धनि मोहनि, धनि है तेरो प्यार।
जनु त्रिशंकु नभ गत भया, भूधर भीमाकार॥
कौरव जिमि जडवत रहे, चाह्यो पकरन कृष्ण।
हरि विचित्र लीला लखत, ठाढे रहे वितृष्ण॥
महाकाल सम मातु लखु, कम्कटाय कटि बाँध।
दुर्दरूप दौरत विकट, विसद गदा धरि हाथ॥
भीमकाय भीषण भयद, भूधर नील समान।
चीरत शर के जाल को, जलद जनौ नभयान॥
लगति देह सरविद्ध यौं, पुष्पित मनहु कदम्ब।
गैरिकगिरि निर्झर निकर, स्रवत सुलोहित अम्बु॥
तदपि जाय पहुँचो जहाँ, कोशल सुत अति धीर।
भामिनि विनवत मातु सों, नैन भरत जिमि नीर॥
देहु मातु बल भीम सम, हनूमान सम बुद्धि।
कार्तिकेय सम शौर्य दै, दनुजहि देहु कुबुद्धि॥

प्राणनाथ पै परो जिमि, लता दोरचत बाज।
मा! मां! मां! बलदायिनी, तेरो ही अब काज॥
धरनी पै धूसरित है, प्राणनाथ को देखु।
राहु विकट सों ग्रसित जिमि, दीन चंद अवरेखु॥
नैन निकसि किमि नहि परे, अन्ध नाहि है जात।
प्राण महा पापी निठुर, तन तजि किमि न परात॥
हमहूँ अब तो सलभ सम, जाय गिरों सग नाथ।
जीवन में नहि साथ भो, मृत्यु होय तो साथ॥
दौरि परी वीरांगना, इक शास्त्र लै हाथ।
प्राणनाथ आवें हमहुँ, लरन तिहारो साथ॥
सुनि ललना ललकार यों, लख्यो दनुज तेहिं ओर।
आवत भामिनि का चितै, अगिनि लपट सी घोर॥
बीच पाय पुनि सजग है, कोशल सुत मति धीर।
चन्द्र हास ताकै गरे, यों घाली तन बीर॥
असि भुजगिनी गिरि गरें, सोषि दनुजसुत प्रान।
फेंकि सीस लपकत लसी, लोहित बिन्दु समान॥
राहु केतु लों पृथक् है, तरफत रह्यो शरीर।
घूरत है लोचन तरों, लरनै परम अधीर॥
नाथ! नाथ! कहि भामिनी, गिरी चरन पै जाय।
जनु माधव के पद परा, पावन सुरसरि आय॥

सार छन्द

उठो उठो वैशालिनि भामिनि,
बुद्धिमती बरदा हो।
दुर्दम्य दानव की नाशिनि,
प्रत्युत्पन्नी भरा हो॥

देवी हो दैवी हो तपसी,
प्रेम पार्वती हो तुम।
पारिजात सात्विकी प्रेम की,
परम मनोहर कुमकुम॥
जिस प्रणयोपासिनि बाला को,
खोजा मैं बनबन में।
शाखा शूल धारिणी पाया,
उसे चंडिका तन में॥

दुष्ट दमन दानव कारण हो,
जयश्री हो नेमी की।
मिलन - प्रतिज्ञा - सिद्ध-स्वरूपिणि,
हुई विधुर प्रेमी की॥
हुआ सत्य पर विजयी मेरे,
पावन प्रेम तुम्हारा।
उठो सुदर्शन दर्शन आतुर,
लोचन युग्म हमारा॥

सयोग शृङ्गार

नयन नीर सों पद पखारि प्रिय,
उठी भामिनी रानी।
वैरिनि लाज गाज सी टूटी,
लोचन लै बिलगानी॥
ह्वै सभीत वैरिनि अनीत सों,
प्रिय हिय सरन पयानी।
धरकि धरकि हिय कथा सुनावत,
रुठि रही पै वानी॥

लुप्त भये नभ बन तन मन सब,
समय न दोउन जान्यो।
गर गर सै अरु बाहु बाहु तैं,
हिय तैं हिय लपटान्यो॥
यमलार्जुन के विटप उदय जनु,
आप्त काम हिय जानी।
मनहु चपलता चपला तजि लजि,
नव नीरद रति मानी॥
सरस भाव भावना रसीली,
कविता जनु सरसानी।
मनहुँ माधवी निज ततुन सों,
गहि रसाल लपटानी॥
ज्यों भोगी लपट्यो शंकर गर,
हरन ताप गरलानन।
लपट्यो ज्यों राधा माधव सों,
तजि लज्जा ब्रज कानन॥
कोकिल कुहू कुहू सुनि उनकी,
तनमयता तब छूटी।
चकित भये दोऊ ठाढे जनु,
शंकित वीर वधूटी॥

चलौ नाथ तपसी कुटिया मैं
पूजन तब सविधि करो॥

मूँ मागो पाहुन पायो पद,
पखारि नय ताप हरौं ॥
चलि दोऊ कुटिया में आये,
बैठे नव तृन आसन।
कन्द मूल भामिनि प्रिय करवें
मेवा काबुल शासन ॥
चाहि चाव सों चाखि बूझि पुनि,
आपुन खाइ खवाये।
करत बतकही तपसी जीवन,
भामिनि उनहिं सुनाये ॥
अति विराग मैं वैदिस तें चलि,
विरह व्यथित उनमन मन।
बन बन भूलि भ्रमत सुमिरत बस,
निज प्रियतम को प्रतिछन ॥
करत अहेर हेर झाँकी की,
झलक कहूँ तव पाऊँ।
लालाइत लोचन सफलाऊँ,
तन मन बलि बलि जाऊँ ॥
चलत चलत थकि सहत सहत दुख,
कोशल सीमा आई।
गंगा कुंड निकट पातन की,
कुटिया तहँ बनवाई ॥
वासर बीते पाख पाख रितु,
रीते मास वितीते।
ज्यों त्यों त्यों निरास विस व्याप्यो,
जीवन जारक तीते ॥

दर्शन आस रही न करी तब,
आत्म घात तैयारी।
सुनतहिं यों मन मुरछि अवीचित,
हिय मे द्रवित दुखारी॥
बिलखि बाल लौ आनि अक-ले,
नैनन नीर बहावत।
बोले, प्रिये, घातकी पातक,
मम सम सूर कहावत॥
पुनि पूँछ्यो अप्रतिम प्रणयिनी,
प्राणार्पण पद जिसके।
दया द्रवित किस देव देविने,
प्राण बचाये उसके॥
मगन मयक मुखी बोली प्रिय,
अंकागत यह बाला॥
सुख अब ताको कहत लहत तब,
दरस मिटी दुख ज्वाला॥

दोहा

पूर्व वृत्ति के स्मरण तैं, पुनि ह्वै दुखित दीन।
जो बीती बाकी कथा, लागी कहन प्रबीन॥

सार छन्द

फाँसी जब दीनी मैं गर मैं,
शब्द सुन्यो 'जय माता'।
'ठहरो ठहरो' कहि आयो तहँ,
जगको जनौ विधाता॥

'करौ न प्राण विसर्जन' बोल्यो,
सुत तूं नर हरि पै है।
पूँछ्यो तपसी सों का विधि तै,
वचन सत्य तुव है है॥
"जगमाता प्रसन्न अर्चन तें,
रहो लगौ ताही मैं।
उर उरमी सुरझावन वारी,
आस धरौ उनही मैं॥"

फिरे फेरि मुख वै गुण गावत,
मैं इत रही पुकारत।
अन्तर्धान भये कछु चलि के
छोड़ि अकेली आरत॥
जगदम्बा ही रूप धारि कै,
मिली रही न संशय।
आई उपकृत निज मंदिर मैं,
पूजन करी भक्ति मय॥
"कुटी चारिणी होकर तबसे,
जन्म बिताती प्यारी।
कन्द मूल फल खाते हा!
हा! दिवस बिताई सारी॥"
"नहीं नहीं दुख दिवस दुरे सब,
अब सुख के दिन आये।
अजुगित घटना घटी ताहिं सब,
सुनहु कान चित लाये॥"

नाग लोक वर्णन

प्रात समय मैं गई एक दिन,
गंगा कुंड अन्हानै।
वृद्ध नाग इक नाग लोक को,
मोहि पठायो जानै॥
सृष्टि विचित्र दृष्टि तहँ आई,
ऊपर छिति छवि छाजत।
नीचैं नीलो नीर किलोलत,
लोलत मत्स्य विराजत॥
छिटकि छिटकि मुख मोरि तोरि तन,
दम दम देह दिखावति।
नीली पीली लाल मनिन सों,
निज जय पत्र लिखावति॥
नीके धरनी के भीतर बहु,
धाम किते तल वारे।
कनक रचित मणि खचित मुकुर सम,
जगर मगर द्युति धारे॥
महानील मणि सब भवनन मैं,
नील प्रभा परकासत।
दिनकर कर कर गति न सकैं तहँ,
निशिकर-कर नहिं भासत॥
अद्भुत वातावरण वरण तहँ,
नहीं बात वातायन।
वारिद बरसत रसत रसा नहि,
नहि तरजति तडितायन॥

तनु तन के पादप पौधे तहँ,
पात बिना ही फूलत।
रञ्ची रुचिर विपञ्ची जिनपै,
फवि फवि फुदकत झूलत॥

विश्व विदित बहु नाग कन्यका,
रूप अनूप सँवारी।
ललित लजीली मृदुल रसीली,
जादू लोचन वारी॥

चितवनि चपल चपल चित चोरति,
चञ्चलता चित जाती।
चैन रैन दिन हैन जिन्है विनु,
तकैं मधुर मदमाती॥

कनक कलित कल कुञ्चित कुंतल,
छवै छवान छवि छाजै।
रुचिर राग रस रीझि नाग जहँ,
क्रीडा करत विराजै॥

बोलत विसम विसम ह्वै डोलत,
चलत सहज जनु दौरत।
रोस कोस सें विकृत प्रकृति गति,
मति मानौ मद मौरत॥

राजा इनको बडो सौम्य है,
बुद्धिमान नय नागर।
जासो राज्य सुशान्त रहत नित,
वृद्धि समृद्धि सुसागर॥

नाग वश जो हम सब देखें,
यों कौशल सुत बोले।

भीम भयानक भीषण भारी,
आसी विस विस घोले ॥
बूझ्यो उनसों हम जब तब उन
नै इतिहास बखानो ।
आइ अवनि पे युवक नाग इक
मुनि लौं ब्रत तप ठानो ॥
सरस सुन्दरी नवल यौवना,
नागिनि अति गरवीली ।
इतराती आई अवनी पै,
सारी सजि नव नीली ॥
कुसुमालकृत कुंचित कुंतल,
कंचुकि झीनी धारे ।
सरकति सारी सरकति तिनके,
उर जे देखत सारे ॥
सो तेहि नाग-तपस्वी के ढिग,
आई अति इठलाती ।
तेहि वस करि निज पति बरिबे की,
हौंस हिये हुलसाती ॥
बीन प्रवीन बजाइ विमोहिनि,
तन मन बसन बिसारे ।
हर्षित आकर्षित तपसिहिं करि,
राग रुचिर अनुसारे ॥
ध्यान दुरत तपसी ने देख्यो,
कलित कामिनी ललना ।
शाप दियो वाने नागन को,
हो यह जीवन सपना ॥

जो आवै अवनी के ऊपर,
भूमिनाग सम होवै।
जीह द्विधा पातरी पावै,
विषधर है श्रुति खोवै॥
रूप अनूप लहै जनि आपुन,
भूपर भुजग कहावै।
मूषक भोजन पवन पिवन को,
जीवन मर्त्य वितावै॥

शापाहत है ताही छन यह,
सर्पिनि भई बेचारी।
होत सरप तब सों अवनी पै,
तद्‌वंशी अविचारी॥

यहै तहाँ इतिहास सुन्यौ मै,
उन सँग दिवस विताये।
बडी सपर्य्या उन सब कीनीं,
भोजन विविध खवाये॥

दिव्य औषधिन को आसव मों,
छकि छकि नित्य पिआयो।
तपकृत कृषत कलेवर मेरो,
पुनि पीवर है आयो॥

महिषि गुणज्ञा लियो प्रतिज्ञा,
मो सन अति ही भारी।
करौ सहाय बिपति आवै जब,
बिनु मम कृत्य विचारी॥
बचन दियो मैं, तब मों कहँ उन,
मुदित कुटी पहुँचायो।

सुखद दिवस गे, दनु सुत सों अब,
मों कह आपु बचायो ॥
यह निधनी के जीवनधन,
कहौ स्वजीवन गीता।
यों कहि लहि प्रिय अंक सोइ रहि,
सुख सों प्रणय पुनीता ॥
"शून्य जगत हो गया प्रणयिनी,
बिछुड़े तुम से जब हम।
राज काज उपरमित दीन मन,
जाते दिन तपसी सम ॥
रंग राग सों वीतराग हो,
विषम विरह व्याकुल मन।
रहते निज अभिराम धाम में,
जीवित, निर्जीवित तन ॥
तब सुस्मृति-तरनी का मुझको,
जीवन एक सहारा।
तव स्मरण हमारा सब कुछ था,
भोजन वसन हमारा ॥
अरि से लगते संगी साथी;
रही सारिका प्यारी।
भामिनि शब्द सिखाया जिसको,
सुनते परम सुखारी ॥
हुई बात अनहोनी जिसको,
कभी नहीं समझा था।
मम माता ने कहा कि उनका,
मन व्रत करने का था ॥

यदि तुम करो सहाय हमारो,
तो विधिवत व्रत पालूँ।
मैने कहा जननि अच्छा मैं,
आशा विधिवत पालूँ॥
कहा कथा सब तथा पिता की,
पौन याचना प्यारी।
लिये पूर्ति के उसकी, बन बन
की जो खोज तुम्हारी॥
मग मग नग नग सर सरिता सर,
मदर कदर सारे।
कुज निकुज पुज में भटके,
पन पन्न मारे मारे॥
कला कलाधर राहु ग्रसित सी,
त्रसित यहाँ आ देखी।
निज प्रियतमा प्रभा का हा! हा!
पड़ी तमा मैं लेखी॥
श्रूमति कहत कथा यह क्या हूँ,
चुकति न चलति यथारथ।
नेति नेति की कहनि पुरानी,
लगी करन चरितारथ॥

सोरठा

भामिनि राजकुमार, कहत सुनत यों सोइगे।
मुकुर सरोवर सार, रवि विधु बिम्ब विभात सग॥

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

पन्द्रहवाँ सर्ग

तपस्या परिणाम

रूपघनाक्षरी

केसा है निनाद यह, देता मन को प्रसाद
  है क्या अनहद नाद योगी श्रुति जो विमात।
देव देव राज को सुनाते तत्रि नाद याती
  सुन जिसे गायक, विहग मोहते सिहाते॥
मोहित प्रतिध्वनि भी मौन हो रही है सुन
  शब्द गुण वाला व्योम विस्मित विचारें बात।
यामिनी सुनाती जाती रवि को भैरवी मनौं
  आती हुई ऊषा को सुनाती रागिनी प्रभात॥

ललित छन्द

धन्य ! धन्य ! तेरा बन भामिनि !,
  धन्य कुटी यह तेरी॥
सुर विहार होता प्रभात में,
  चित चचल गति फेरी॥
जर्जर मन की जरा छीन कर,
  नव जीवन है देता।
कमल नवल सम मुकुलित हो मन,
  रसिक भाव उपनेता॥
कुरस जगत भी रसमय होता,
  शूल फूल बन जाता।

नहीं योग्य गनके लोक के,
मृत्युलोक में भरमों ॥
विनय करी बहुतक उनसों हम,
तदपि साप नहिं मोच्यों ।
ह्वै है भारत भूपन या का,
भुवन कह्यो कछु सोच्यो ॥
महावीर सम्राट देश का,
यवन को वह कर्ता ।
सुता तुम्हारी वैशालिनि हो,
कोशल सुत हो भर्ता ॥
वृथा महा मुनि वचन न होवै,
हिय संशय जनि आनौ ।
परिणय करो यहां विधिवत तुम,
होनहार यह जानौ ॥
सुनि यह कथा अमिय वर्षा सो,
कोशल सुत हरसाये ।
'एवमस्तु' कहते मंगल के,
गीत अपछरा गाये ॥

भामिनि विवाह

जंगल में मंगल जो सुनियत,
ताको छटा दिखावै ।
प्राञ्जलता जंगल की पलटी,
वातावरण बतावै ॥
गन्धर्वा गंधर्वी माया,
ऐसी तहँ प्रगटाई ।

ले धनु के टंकार हरौ अब,
मायावी की माया।
रचक ही में रचक लीला,
दुरे गीतिका छाया॥
तमकि तुरत कोशल सुत लीन्हे,
सर सुसरासन त्यों ही।
स्वस्थ सुखी तुम रहो मगन नित,
गगन गिरा सों त्यों ही॥
सुन्दर मनुज काया धरि छाया,
उतरि अवनि पै आई।
ताही कौ अनुसरति हरति हिय,
सूरति सरस सुहाई॥
तेहि वृन्दारक वृन्द वन्द्य,
बोल्यो बानी सन्मानी।
स्वस्ति भामिनी स्वस्ति अवीक्षित,
वीक्षित नरवर मानी॥
नय गन्धर्व माहि तुम जानो,
ये जातीय हमारे।
अति प्रसन्न हैं तुम दोउन पै,
लखि सब सुकृति तुम्हारे॥
पूर्व जन्म की दुहिता यह मम,
तुम जेहि आजु रचाये।
करत बाल क्रीड़ा अनीठ,
आश्रम में कुम्भज पाये॥
दिया शाप तुम तुरत पतित ह्वै,
जाइ जगत में जनमौ।

धन्य महा तन्नी की महिमा,
कल केवल मन जाता ॥
श्रवण हुए है स्वर श्राप्लावित,
प्राप्त काम ज्यों जोगी।
सारँग सारँग लीन मत्त हो,
सारँग स्वर लय भोगी ॥
विपिन विमोहक मोहक कुटिया,
मोहक है सुर धारा।
वाद्य विमोहक सुना न मैंने,
जग में ऐसा प्यारा ॥
प्राणनाथ ! मधुर स्वर सुन्दर,
नित सुनात नहि ऐसो।
मायापति मोहन-हित माया,
मोहन कौतुक जैसो ॥
सुनौ सुनौ प्रति ग्राम मूर्च्छना,
व्यक्त अधिक अब होवै।
आरति तजि इत उत रति आवै,
अनुरत अवनी जोवै ॥
लखौ लखौ स्वामी उत्तर दिशि,
केसी विभा विभावै।
छन छन छितिपै छहरति लहरति,
सुरसिरि सुषमा छावै ॥
दनुकी किधौं दानची माया,
सुन विनाश सुनि आवै।
छुरन करन छारन हित हम कहँ,
प्रतिहिंसा प्रगटावै ॥

लै धनु के टकार हरी भ्रम,
मायावी का माया।
रचक ही में नचक लीला,
दुरे गीतिका छाया॥
तमकि तुरत कोशल सुत लीन्हे,
सर सुसरासन त्यों ही।
स्वस्थ सुखी तुम रहो मगन नित,
गगन गिरा सा त्यों ही॥
सुन्दर मनुज काया धरि छाया,
उतरि अवनि पै आई।
ताही की अनुसरति हरति हिय,
सूरति सरस सुहाई॥
तेहि वृन्दारक वृन्द वन्य,
बोल्यो बानी सन्मानी।
स्वस्ति भामिनी स्वस्ति अवीक्षित,
दीक्षित नरवर मानी॥
नय गन्धर्व माहि तुम जानो,
ये जातीय हमारे।
अति प्रसन्न हैं तुम दोउन पै,
लखि सब सुकृति तुम्हारे॥
पूर्व जन्म की दुहिता यह मम,
तुम जेहि आजु बचाये।
करत बाल क्रीड़ा अर्गीठ,
आश्रम में कुभज पाये॥
दिया शाप तुम तुरत पतित ह्वै,
जाइ जगत में जनमौ।

नहीं योग्य गन्धव लोक के,
मृत्युलोक में भरमौ ॥
विनय करी बहुतक उनसा हम,
तदपि साप नहिं मोच्यो।
ह्वै हैं भारत भूपन या को,
सुवन कह्यो कछु सोच्यो ॥
महावीर सम्राट देश को,
यज्ञन को यह कर्ता।
सुता तुम्हारी वैशालिनि हो,
कोशल सुत हो भर्ता ॥
वृथा महा मुनि बचन न होवै,
हिय सशय जनि आनौ।
परिणय करो यहां विधिवत तुम,
होनहार यह जानौ ॥
मुनि यह कथा अमिय वर्षा सा,
कोशल सुत हरसाये।
'एवमस्तु' कहते मगल के,
गीत अपछरा गाये ॥

भामिनि विवाह

जगल में मगल जो सुनियत,
ताको छटा दिखावै।
प्रोज्लता जगल की पलटी,
वातावरण बतावै ॥
गन्धर्वी गधर्वा माया,
ऐसी लई प्रगटाई।

नाटक पट पलटन ज्यों त्यों ही,
नव दृश्यावलि आई ॥
तनहु रहे इत उत जंगल के,
प्रतिनिधि पादप झाड़ी।
पूर्व रूप में रही तनहु यह,
भामिनि कुटिया ठाढी ॥
वाकी तप साक्षिणी रही शुचि,
तृण मंदिर की शोभा।
दरस परस पूजन अर्चन हित,
रही पथिक मन लोभा ॥

देखत देखत आँगन बनिगो,
बनि गइ मंडप शाला।
रंग बिरंगे लगे पताका,
मंडित मंगल माला ॥
निज रितून को बिनहि विचारे,
विटप वल्लरी जेते।
ह्वै पल्लवित सुपुष्पित प्रमुदित,
फूल उपायन देते ॥
गंधसार प्रिय गंधसार नव,
गंधमादिनी वल्ली।
गंध प्रसार कियो परिणय मैं,
जानि आपुनो लल्ली ॥
कुटज, कटेरी, करवन, किंशुक,
कुसुमित कुंडल लाये।

उच्छ्रित शाल पहरुश्रा बन के,
चामर चारु डुलाये ॥
नवल अशोक कुसुम कुङ्कुम दै,
अपनो स्नेह दिखावत।
सुधा स्वादुमय पूरित कलशनि,
नारिकेलि बहु लावत ॥
चहकि पड़ी चिड़िया करि चुह चुह,
सुर में ताल मिलाये।
चकित देवनर्तकी सुनर्तक,
जे गन्धर्वन सँग आये ॥

गन्धर्व समारोह

भयो लास्य संगीत समागम,
ऐसो जग अनहोनौ।
गन्धर्वहि जब श्वसुर बने अरु,
वर पितु समधी दोनौ ॥
हाहा, हू हू 'नय' के जाती,
आये लिये सघाती।
छिति गधर्व-लोक चलि आयो,
दर्शक हैं बन जाती ॥
रम्भा रमा घृताची तीनौं,
लै ले निज निज ज्ञाती।
सुन्दरता की अनुपम प्रतिनिधि,
सुरति अनेक विभाती ॥
मधुरस्रवा, मीननयना सँग,
तहँ तिलोत्तमा रानी।

तप नाशक मेनका उर्वशी,
बहु सुरांगना मानी ॥

नर्तन समारम्भ

मकरी जाल सरिस सारी हू,
पहिरे लागति नग्ना ।
अछय यौवना लजति लुनाई,
निज सुघराई मग्ना ॥
करति हास परिहास परसपर,
दामिनि दसन दिखाती ।
यहि विलासतें दसति दर्शकन,
प्रेमहि प्रेम सिखाती ॥
जुरि जमात जोखिम जलसा मैं,
जाकी अकथ कहानी ।
अनँग काम को साङ्ग वरन की,
नर्तकीन हिय ठानी ॥
नयन अनी हिय बक चुभावति,
लचि लचि ताहि डुलाती ।
पुनि घन-उरज उधारि मारि तेहि,
मर्मन लौ पहुँचाती ॥
त्राहि ! त्राहि ! दरसक दल टेरत,
आह ! आह ! बिललावैं ।
निर्दय नर्तकि नवायुर्वन सों,
तिनकहँ अधिक सतावैं ॥
भ्रमरक-नर्तन नाभि उघारत,
नयनन को बिरमावैं ।

जिमि धीरवनी लैकै टापा,
मीनन दीन फसावैं ॥
थिरकति सघन जघन दिखरावति,
दरकि देत हिय केते ।
भरत उसास मरत रुन जैसी,
साँस सभा में जेते ॥
त्रिवली तीव्र शरासन ह्वैवै,
धिरवति निष्ठुर ऐसो ।
कुच कठोर निज करति मसलि मृदु,
लुलुमावति मन जैसो ॥
विजित देखि वे वनबासिन को,
कटि किंकिन भनकावै ।
नूपुर जय ध्वनि लौं पुनि धुनि करि,
दरसक हास्य दिखावै ॥
काम ताप तरफत रसिकन कौं,
लखि सुर बारबधूटी ।
श्राप्‍च्योतन हित, हित सों धरती,
चत पै गायन बूटी ॥
कियो सजग बनचर नर नारी,
वन विहग वन वासी ।
लै सगीत सुधा सजीवनि,
दियो सबनि सुधि रासी ॥
मधुरस्रवा, मेनका, रम्भा,
युगपत्त गायन कीन्ह्यो ।
काम ताप तापित तन मन वै,
सुधा लेप जनु कीन्ह्यो ॥

राग देवगन्धार

जग मैं होती है अनहोनी।
बड़े बड़े तपसिन तप छै है, भरगे है बहु जोनी।
बिलग भई राधा माधव सों, ज्यों बिखरत हे लोनी॥
सत्यव्रती हरिचंद व्रती हूँ, सही विपति गहि मौनी।
भरमत इत कोशल सुत आये, पायो नारि सलोनी॥
एक प्रतिज्ञहि काट्यो दूजी, ब्याहे बिनो मनोनी।
अनहोनी होनी दोऊ जग, खेलत आँखमिचोनी॥

इतनोई मैं तुम्बर मुनि लै,
सकल ब्याह सामग्री।
उद्गाथा, होता, आदिक सन,
परम धीर अव्यग्री॥
दिन मे ही है लग्न शुभप्रद,
यह विचार कर आये।
शुभ हो शीघ्र यही शास्त्रों मे,
मुनियों ने बतलाये॥
मगल कलश धरा मडप में,
विधि विवाह की होवे।
व्यर्थ न कालात्यय हो देखो,
लग्न कदापि न खोवे॥
वेदशास्त्र अनुसार ब्याह करि,
तब दोउन बैठायो।
पावक को साक्षी करि मुनि नै,
दोऊ सपथ करायो॥

कोशल नन्द अवींचित,
भामिनि को अर से अपनाता।
पाणिग्रहण कर सपथ करूँ मैं,
यावत् जीवन नाता॥
सखा यही हैं, मित्र यही हैं,
प्राण यही तन मेरा।
धन, धरती, धृति, धर्म शर्म सब,
भामिनि सब है तेरा॥

भामिनि कह्यो अचल ध्रुव साखी,
अरुन्धती है साखी।
मन वच कर्म लाइ पातिव्रत,
धर्महि मैं मति राखी॥
अनल अहौं, भगवान देहु बल,
व्रत हो सफल हमारो।
विचल होउ जौ नेक स्वपथ सौं
जौं परिजनहि निहारौं॥

जाहुँ अतल पाताल रसातल,
अधमाधम गति पाऊँ।
अधम जोनि जनमहु यहि तन तजि,
रौ रौ नरकहि जाऊँ॥
सबके सौंह सौंह की ही दोउ,
स्वस्ति पाठ मुनि कीने।
घन घन रव करि बरसे नाही,
बूँदनि सौं रस भीने॥
वनवासी भामिनि के सेवक,
उर उल्लास बढ़ाये।

कन्द मूल अरु नारिकेलि फल,
सफरा* करवन लाये ॥
बन नारी अति झीने बल्कल
चमचम चारु सजीले ।
लाईं झलझल ताल अमृत जल,
नयनन सजल रसीले ॥
मृग शावक जो नित के साथी,
हरे हरे तृन लायो ।
हीरामनि सुस्वाद पको फल,
लये ठोर मैं आयो ॥
आइ समोद गोद गिरि ताके,
फल अधरन मैं दीनो ।
सुस्मित भामिनि चूमि ताहि फल,
तासु चोंचु तैं छीनो ॥
लपचि लपचि सारस पग लाँबे,
लै कुमुदन की माला ।
गरे गेरि भामिनि दिखरायो,
निज नव नेह रसाला ॥
युगपत पुष्पित पादप बन कै,
अति प्रसन्न भरि लाये ।
सुमन सरोवर विहरि व्योम सों,
भर भर सबद सुनाये ॥
मुदित मन्द मारुत बहि उन्मुख,
सुमन वृष्टि करि दीन्ही ।
जनु वर वधु पै सन्याछत्र दै,
अछत अर्चना कीन्ही ॥

* सफरा शाल वृक्ष का कन्द । करवन बड़ा मधुर खिन्नी से छोटा बनन फल ।

सुरभि सुरभि मय सुमन सिन्धु मैं,
होत विलय ही दोऊ।
चलत न स्वागत स्वीकृति सूचक,
जुपै डाँड-कर दोऊ॥
सुमन समूह समावृत सुस्मित,
राजत दोऊ ऐसे।
कुसुम कुसुमसायक नायक सों,
रति को व्याहत जैसे॥

गीत लहरि लहरनि लागी पुनि,
नूपुर किंकिनि बाजी।
थिरकि रहे, तहँ थिरकि रहे लय,
रसु लय सुरबधु राजी॥
गाय गाय पुनि निकट आय कै,
ठुनकत बर बरनारी।
बिहँसि कहत कोउ या मुख सनमुख,
ऐसी दुलहिन प्यारी॥
मोरि अंग करि व्यंग कहति कोउ,
भले भूप सुत भूले।
तपसि न रहे तऊ तपसिन मैं,
कहौ कहा अनुकूले॥
तिलक रचति कोउ चन्दन चरचति,
खौर सुरुचि लगावै।
आँजति नैन बैन कह अंजन,
करि रखियो मुसकावै॥

अचल ओट दृगचल चचल,
चालि कहति यो रम्भा।
राजहस के पाणि परी,
पडुकी अतीव अचम्भा ॥

कहति मैनका मैन का वाहय,
वन्यो सुरति रति द्वारा।
लह्यो मनहु मेना धैना करि,
सुक सौन्दर्य सवारा ॥

यों कहि गहि अचल चचल ह्वै,
मुरि मुरि दुरि दुरि आई।
लह्यो उपायन, कह्यो, उपायन,
पायो प्रिया बधाई ॥

बधाई। राग भैरवी।

बहू पाई सरस सुन्दर, बधाई है बधाई है।
अचल हो माँग की लाली, निराली आज आई है ॥

करैं ऐसी बधू बर पै, कृपा की कोर बनमाली।
भरैं सामोद नित ही गोद, मुख पै नित रहै लाली ॥

बड़े तप ताप तपननि पै, दाऊ सौभाग्य ये पाये।
उपायन दो बधाई पै, लहौ सुख नहि दुरति आये ॥

सजै कोशल की फुलवारी, नई सुषमा समावारी।
बनो छिति के पुरन्दर तुम, सची सम हो बधू प्यारी ॥

करैं अजिया ससुर शुभ जो, ससुर हरि भी दुरित टारैं।
कला सकला कलाधर सी, कलित हो, राजु लै आहैं ॥

बरवै

दियो अविदित याको, मौक्तिक हार।
राख्यो तन पै नहि कछु, बिना विचार॥
भामिनि सकुच रही नहि, तहि कछु पास।
रजत हेम 'नय' दीन्यो, देखि उदास॥
देन लगी भामिनि तब, उमगि उदार।
कह सब बहु धनि तोंहि, शची अनुहार॥
देन लगी सब नारी, उनहि असीस।
दया दयाम्बुद बरसै, तुम्हरे सीस॥

अति बरवै

जानि पर्‌यो नहि दिन रुच, अथयो निसि आन।
फुलमुलात दीपक लखि, किय सब प्रस्थान॥
विडरानो बनवासी, प्रस्थित निज गेह।
नव दपति को जय जय, बहु करत सनेह॥

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त।

सोलहवाँ सर्ग

गन्धर्व लोक

निशा अभिसार

सार छंद

कौतुक अंजन, रागी रंजन,
कौशिक व्यंजन प्यारी।
विभा विभंजन, चौर्य विवर्धन,
रति सुखदा निशि न्यारी॥
सुमन सिंचिका, नीड़ प्रेषिका,
कोक निकर सुखकारी।
नखत विकासक, तान्त्रिक प्रेरक,
श्यामा सारी धारी॥
निद्रा दायिनि, शान्ति विधायिनि,
योगिन को अति प्यारी।
ताप विनाशिनि, परम विलासिनि,
भय दायिनि लय कारी॥
क्षपा निशा, शर्वरी, यामिनी,
क्षणदा रात्रि तमिस्रा।
विभावरी रजनी, छलनी तू;
तमा-वियोग विभस्रा॥
यामात्रय, द्वै पक्षिनि संध्या,
सुता निशीथिनि, नक्ता।

ज्योतिष्मती, जागरी, प्रहरा,
क्षेपा निशिचर भक्ता ॥
अति अभिरामा, कतिपय नामा,
विगत त्रियामा होन लगी।
उदित अरुणिमा, मुदित सुगरिमा,
महिमा महि मा होन लगी ॥

प्रतिस्पर्धिनि निशि की ऊषा,
नभ प्राची पै आई।
ईर्षाकर्षा लोहित नयना,
रजनी पै मुसुकाई ॥

शिथिल गात, प्रतिहत रसना निशि,
नील सुवसना रानी।
ईर्षाकुला उषा दृग सों दुरि,
चली अतल अलसानी ॥
करत प्रयान उन्मना निशि, निज
समय विगत जिय जानी।
नीच कीच से दास उषा के,
तमचुर पिक अभिमानी ॥

कुहू कुहू कित चली अली तू,
बोले यों कटु बानी।
'दुरनि श्रम कालोऽय' बोली,
दहियर 'अये मानी' ॥
'लखि अपकर्ष हर्ष हिय जनि करु,
निज उत्कर्ष समय जानी।
विभावरी की विभा तुम्हें का ?
तुम सेवहु ऊषा रानी ॥'

साधु साधु श्यामा सुनि बोली,
क्रूर — कुटिल अज्ञानी।
सुनी अनसुनी कै पुनि कुक्कुर,
कहत कुरुख कटुबानी॥

प्रथम समागम अवसान

उषा उदय छन अथै, पथै गो,
आयो दिपत दिवाकर।
घन-तम घन करि अति आलोकित,
निसरति स्वकर निकरकर॥
नींद नाथिनी निरखि भानुभा,
भामिनि नींद भगायो।
ताके सुखद सपन-सौंधन को,
हा! हा! इहरि ढहायो॥
अगराती सुठि अगराती प्रिय,
सोवत मुख मुसकायो।
जानन कौ रहस्य निज नूपुर,
मुखरित कियो जगायो॥
खुलतहिं नैन, नवल दुलहिन के,
नयनानि सौं मिलि पाये।
सुखद सजीले सुमन सुरति के,
सुमन सरिस खिलि आये॥
स्नेह सजी त्यों लजी लाज,
घूँघट पट पलकनि आन्यो।
आनत आन कह्यो अनकह्यो,
नैनन तउ बतरान्यो॥

लखि लोयनि सखि लज्जा सन्मुख,
मुख नहिं कोऊ खोलैं।
बाज बैन कै करत नैन नचि,
रचि रचि रस की बोलैं॥
मुख मुसकान करी बिचवानी,
दोऊ मृदु मुसकाने।
'मम दिसि देखि कहा मुसुकाये ?,
बस रस उर उकसाने॥'
'यह मुसुकान तुम्हारी ही है,
क्यों या मुझ पर आई।
नूपुर ने क्या तुझे जगाया ?,
रही न यदि चतुराई॥'
'भेद भरो रावरो हियो है,
सो तुम मो पै ढारी।
सरसि लाज की पलना ललना,
छलना तामैं पारी॥'
'मुख कपोल या मुखसुख पायें,
तब तो रसना खोलैं।
बिना पोच सकोच सोच का,
हरन किये क्या बोलैं॥'
'हरन करनई तुम जानत पिय,
बरन करन मैं सकुची।
कहौ हिये राँची साँची सब,
नीति न पूरन बिरची॥'
नान्हू बनचर 'दुलहिन' बोल्यो,
नरियर हम लाये हन।

आओ देखैं तो दुलहिन का,
शुभ सुहाग में माँगन ॥
कढि भामिनि यदि आवत देख्यौ,
लै सर्वन गन्धर्वन ।
साज बाज साजे नयं बारा,
लीन्हे वस्तु अखर्वन ॥
भामिनि दौरि कह्यो निज प्रिय सों,
'नय' की निकट अवाई ।
सुनि, सुचि ह्वै, लै अर्घ्यपाद्य सब,
चले करन अगुआई ॥
सादर ससुर चरन पद नायो,
शुभाशीष नय दीने ।
धनि निज उर सिर सूँघि वचनवर,
कहे भाव रस भीने ॥
लाल निहाल रहो नित, इततें
अब पयान उत कीजे ।
मम , प्रासाद पवन आधारित,
अपनो करि सुख लीजै ॥
लखौ समा सुषमा, वन बागन,
की उपमा नहिं जाकी ।
सूचित करौ पिता को जाकी,
मति चिन्तित गति थाकी ॥
रवि-छवि-मान विमान विराजत,
करहु पयान सवेरे ।
बनवासिन को देहु दिये हम,
जेवर बसन घनेरे ॥

पढ़े लिखे तो है नहिं ये पर,
सभ्य आचरण इनके।
विजन विपिन में रहीं भामिनी,
सुखी भरोसे जिनके॥
भूषन वसन सुभोजन छाजन,
लाये हैं हम यह सब।
देहु यथोचित इनहिं चाय सों,
विदा लेहु इनसे तब॥

बनबासी बिदाई

नानू सुनि, धुनि सीस विकल है,
निज परिजन सों बोल्यो।
केहि विधि रुकै जाति भल भामिनि,
सुनि सबकी हिय डोल्यो॥
भोले भाले सीधे सादे,
बनबासी सब उनमन।
भरत उसास आँसु बहु ढारत,
आरत आये ता छन॥
'सोरि हमारि कौन है देवी,
हमहिं जु तुम तजि जाती।
कहब होय हम सब हाजिर है,
पाँव छुअँ बहुभाँती॥
नानू, नन्ना, मुन्ना, भाना,
छमनू समना, धाना।
ई प्रसन्न, लहि इहाँ महल सुख,
करी टहल तुम नाना॥

भटकत भूलि अकेली आई,
बन में तुम अपनाई।
सब सुख जुटी कुटी रचि दीनी,
रहि संग करि पहुनाई॥
यदपि न चाहत चित्त तऊ तजि,
जावँहि बाबा के घर।
यह अनुरक्ति भक्ति तुम सबकी,
तनिकौ तजिबो दुस्तर॥
अपवस विधि की कुछ विधि नाहीं,
सब विधि ता बस प्रानी।
जोइ सोइ सोई लै जावै,
नियत अटल यह जानी॥
सुनत सबै सिसकत रहि रोवत,
धरति न धीर धराये।
'हा हा कैसे जिअब पिअर दुख,'
स्वामिनि तुमहि दुराये॥'
धीरज धारि धराइ भामिनी,
असन बसन दै भूषन।
कहत सबै नहि हमैं प्रयोजन,
इनसों यदपि अदूषन॥
पहिनब हू हम सब नहि जानत,
कहा करै लै इनको।
हाँ, 'करि चाव भाव धरि इनको,
सुमिरहिंगे स्वामिन को॥
जाय लहौ आमोद मोद लै,
लाल गोद में आवो।

गिरा गूढ इक बूढ कह्यो यहि,
मैको जनि निसराओ ॥
जोरि पानि परि पाँव भामिनी,
की उन करी बिदाई।
आँसु पोंछि दै कन्द कोछ मैं,
नरियर शाल निकाई ॥

बाबा आवत देख्यौ भामिनि,
दौरि गई कुटिया में।
बाँधि छानि सब प्रेम उपायनि,
होइ बिलब न जामें ॥

धनुष, कवच, तरकस, अँगुलीयक,
भामिनि निकसी लीने।
देखि अवीक्षित तासों बोल्यो,
तन मन तो हम दीने ॥

दिये नहीं आयुध हम तुमको,
क्या यह भी छीनोगी।
लेकर सब कुछ पति का क्या तुम,
बामन रूप बनोगी ॥

नहीं नाथ मैं अर्धांगिनि हौं,
अरध भाग मम सब मैं।
आयुध नाहन मम करतब अरु,
चालब तब करतब मैं ॥

हो न मयंक मुखी तुम केवल,
बुद्धिमती हो बाले।
लौह अस्त्र मत लो हाथा में,
पड़ जायेंगे छाले ॥

तवहित हित मम अहित होय तौ,
चिन्ता चित्त न ताकी ।
सरस बस पतिवर तिय कौ पिय,
रीति सुपतिवरता की ॥

सौंध विहायस सम विमान अति,
आए घडे सजीले ।
दुलहा दुलहिन को सिठाइ ले,
उडे जाय नभ नीले ॥

चकित लखत वनवासी यों ज्यों,
बानर इक टक नयनन ।
लखत धरनिजा खोज हेतु नभ,
गत मारुतिहि अखैनन ॥

देत ज्ञात परिचय नय आबा,
जग अग नग जे आवैं ।
लसौ विन्ध्यगिरि नमित चहत चित,
कबहि घटज अपनावैं ॥

उत त्रिकूट, यह चित्रकूट सुचि,
सुरुचि राम जहँ छाये ।
तापस वेस विसेस अनुज सिय,
सहित विविध सुख पाये ॥

सख कूट यह सुभ असख्य सुचि,
सरस अक मैं लीन्हे ।
देवदत्त-वर पाञ्चजन्य अरु,
पौंड्र सख यह दीन्ह ॥

वृषभ राशिगत शम्भु वृषभ पिय,
मा वृषभाचल न्यारो ।

हसनाभ हसाभ हेमगिरि,
हस वाहिनी प्यारो ॥
यह कपिलेन्द्र, कपिल कर लालित,
पालित परम यशस्वी ।
करत तपस्या महा मनस्वी,
मनु मुनि तीर्थ तपस्वी ॥
रजत शृंग कैलाश कलित यह,
स्वर्ण शृङ्ग इत राजै ।
द्रव्य राशि जुग जनु वसुधा हर,
हरि पूजा हित साजै ॥
पुष्प प्रकीर्ण जीर्ण पुष्पक गिरि,
पुष्पक यान प्रदायक ।
चाहत सुर कोपेश सराहत,
मुनि पुलस्त्य कुलनायक ॥
घन अखर्व लै मेघपर्व यह,
है सगर्व दिमिनि मैं ।
रमत यथा घनश्याम रास रस,
धाम सुब्रज कामिनि मैं ॥
तप पारायण नर नारायण,
सकल सिद्धि जहँ पाई ।
वह यह बदरीवन लागत जनु,
तप की राशि उठाई ॥
पुण्य पुण्य चरणगत कपोत युग,
देव दूत लौं राजत ।
धरि तिन को यह तुहिन शृंग गिरि,
जिमि जस पुज विभासत ॥

गौरीशंकर को प्राणप्रिय,
गौरीशंकर आयो।
को अस कहाँ दरस करि जाको,
शुभ न परम पद पायो॥
करौ प्रनाम दीन मन इनको,
आशुतोष कर दाता।
नाशक पोषक जग को भर्ता,
परम दयालु विधाता॥
पश्चिम में मयूर भूधर है,
श्वेत मयूर निकेतन।
सुर सेनानी कार्तिकेय जहँ,
विहरत प्रियवल्ली* सन॥

गंधर्वलोक

आय गया गन्धर्व लोक वह,
आभा हरित विभासत।
तारा बुध की किरणावलि से,
मरकत प्रभा प्रकासत॥
कहुँ कहुँ जो प्रवाल प्रतिमा लौं,
अरुण विन्दु से न्यारे।
ते गन्धर्व सौंध सुन्दर हैं,
रुचिर रम्य रतनारे॥
परम मनोहर शकुलों सरिता,
सर्पाकृत बहती है।

---

* वल्लीनामा कार्तिकेय को जाया।

रेखा गणित-लजावहि मानी,
इतराती रहती है ॥
साथ हमारे राग मिलावति,
लावति सुर सारंगी।
या विधि की सरिता गति जानत,
जे संगीत तरंगी ॥

श्री भारती भवन

वह मंदिर जो सब सों ऊँचो,
मनहु कलाकर छाजत।
हीरक रचित विबुध-बुध-वन्द्या,
भगवति भारति भ्राजत ॥
है गन्धर्व सर्व कुल देवी,
कृपा कोर निज राखत।
सत्व सिंधु फेनाभ, मनौ जो,
हंस वाहि पै राजत ॥
लै निज बीन प्रसून भवन मैं,
सुर संगीत सिखावति।
सुर सुंदरी सखी हम सबहू,
सीखि सीखि सँग गावति ॥
भँवर-मूर्च्छना राग-उदधि गत,
स्वर लहरी मन भावत।
सर सरिता थिर सुनैं प्रतिध्वनि,
कै नगताल बजावत ॥
शानि मानि अनहद या कों मुनि,
अनुदिन सुनि सुख पावै।

याही को युनानी शानी,
तारक राग बतावैं ॥
देखो छोट बड़े सब लेकर,
ठाढ़े ध्वजा पताका।
तुव सब स्वागत करने को हैं,
बजत बाज बाजा का ॥
स्वागत गान करन लागे सब,
ज्यों विमान छिति उतरो।
संख नाद संग कियो आरती,
पहिनायो गर गजरो ॥
इत आयो, इत आयो कहती,
नारी मार्ग दिखावैं।
लास्य-भवन लै गई पाहुने,
चाटुकार बतरावैं ॥
देखि तहाँ की रम्य भूमि को,
अरु भवनन को सजधज।
भये चकित चित कोशल सुत अति,
भूले कोशल रजगज ॥
सुन्दर भवन परिच्छद सुन्दर,
उपकरणन समलंकृत।
आभरणन परिपूरित सब थल,
भूषित सुस्तर विस्तृत ॥
नर नारी बालक मन मोहक,
अतही सुन्दर सुन्दर।
सुन्दरता की रुचिर राशि तहँ,
नहिं कुरूप कोऊ नर ॥

रग रग के बर विहग बहु,
सुन्दर पशु अति अद्भुत।
हिंसक जन्तु कदापि न कोऊ,
शान्त दान्त सब श्रीयुत॥

बन उपवने सब रम्य मनोहर,
निर्झर झर झर करते।
सर सरवर, शीतल जल झलमल,
परिमल मय हिय हरते॥

आसन कुंज निकुंजन में सुठि,
केलि गुहा भापन हित।
मुम्बुल सम बल्लरी चढी तहँ,
लहरत मारुत धूनित॥

उत्सव जानि परत नित नूतन,
नव परिधान विभूषित।
बनि ठनि रसिक सबै नर नारी,
जातीं वाद्य समन्वित॥

क्रीड़ति तटनी तट पै कोऊ,
कोऊ क्रीडा गृहथल।
कोऊ विचरत कौतुक-वासनि,
केलिकरत सरसी जल॥

असन बसन हित नहिं चित चिन्ता,
नहि भूषन की इच्छा।
रहत न उर बालन लालन की,
पालन की न समिच्छा॥

असन बसन शाला है पथ में,
है आभूषन शाला।

लेहु, खाहु, ओढ़हु, पहिनहु जो,
चाहहु मुक्ता माला ॥
लगत न मोल अमोलहु को कछु,
मोल परत राजा को।
सकल प्रजा परिपालन सिच्छन,
धर्म कर्म राजा को ॥

वार्धक्य

गहन समस्या जीवन की जो, समय पाय जो व्यापै।
छार करै सब सुख साधन को, मार सरिस तन छापै ॥
रूप कुरूप करै जर जर तन, जीवन सों करि उनमन।
अबलाहूँ प्रबला ह्वै जातीं, घर को वै करती बन ॥
रोग आय कै लेय बसेरो, वैद्य राज नित आते।
भोजन में रुचि नाहिन रहतो, केस सेते ह्वै जाते ॥
ऐसी कुत्सित जरा वहाँ नहिं, अरुण तरुण मद माते।
सकल अनंग रंग रंगराते, चाल चलत इतराते ॥
काम कला कुशली कामिनि सब, कहू खंडिता नाहीं।
मुग्धा मुग्ध करै सरसा है, चित्त चंडिता नाहीं ॥

गान्धर्व जीवन

अमर जवानी अमर जिन्दगी, अमरन सन गन्धर्वन।
मर्मर.मृदु.किल.नूपुर.न्यारन.,ध्वान.केलि.पै.विहरन.॥
आनंद जहँ को वेद स्मृति है, असन वसन आनँद है।
आनँद जहँ को गुरु सँघाती, आनँद ही जीवन है ॥

वासर बिगत, बिगत सुधि सों मे,
कुँअरहिं लखि लखि लीला।
देश कोश की सुरति सिरानी,
यों छवि उत सुख शीला॥

आनद लोक प्रविष्ट बधू वर,
प्रेमासव मद छाके।
वातावरन अनद करन जहँ,
रहँ तहँ कहँ सुधि काके॥

जोगी लौं तन्मय सजोगी,
दोऊ दोउ रंग राते।
जनु प्रतच्छ अर्धनारीश्वर,
विलसत सुख सुधमाते॥

स्वागत हित जलसा मै आवन,
को आयुस नित आवत।
दोऊ भट्ट लट्टू दोउन मैं,
काहु न कोऊ पावत॥

आनँद-दायक नित्य गानहू,
नहिं उनको कछु भावै।
सिखराचल पै विरमे सोच्यौं,
बहु इत बाधा आवै॥

ता गिरि भूल भुलैया मैं नित,
निज को भूलत पावत।
भूलि मिलत मिलि धसत भूलि मैं,
कौतुक मिलत रसाल॥

कछुक दिवस बसि गये कलित कल,
फचन नाम विजन बन।
कौतुक केलि अकेलि करत तहँ,
हेरि अहेरि दोउ जन॥

कबहुँ दिखावति भामिनि तिन को,
कौशल कर शर अपनो।
शक्ति शल पाशासि चातुरी,
जो नारिन का सपनो॥

तहँ ते दोउ गे मरकत मंदिर,
पुनि पुखराज सरोवर।
कियो केलि कल्लोल कोल में,
कूनित कै पद्माकर॥

विद्युति गिरि गे यथा नाम जो,
दमकति निमि मणि हीरक।
चमकति चन्द्र चन्द्रिका लहि जनु,
उदधि उमगित छीरक॥

हिमि गिरि रसे वहाँ तें चलि पुनि,
मञुल मन में आये।
वनक वनक तहँ को मन मोहक,
वासर बहुत बिताये॥

एक दिवस भामिनि ने देख्यो,
क्रीडति कामिनि बहि बन।
चलन बलन सकलिन तन याको,
देखो तो जीवन धन॥

सघन कूज मैं दिपति दुरति वह,
धन मैं दामिनि सी है।

कोशल सुत मुनि उत देख्यो ज्यों,
बन सुपमा निकसी है ॥
"देखूँ किसे आँख ले किसकी,
यह बोले कोशल सुत।
जहाँ देखता जिसे देखता,
बस भामिनि शोभायुत ॥
मूर्ति एक दीखती तुमारी,
अनदेखा देखा सब।
मुझे देखना और न कुछ है,
रमी दृष्टि में तुम जब ॥"
"देहु दृगनि में दृग देखैं तो,
झपि दृग काके जावें।
अपलक रहे चाहि सपलक है,
नेही नैन कहावैं ॥"
जोरत दाठ अनीठ सलज हैं,
मिले अंक भरि दोऊ।
रहसि रहसि रस बस चूमत वै,
जनु उन लखत न कोऊ ॥
पीहा पीहा कह्यो पपीहा,
चौंके दोउ बिलगाये।
यदपि अवै दोऊ विलास रस,
छाकत छकि न अघाये ॥
चलो चलें प्रस्रवण गिरी को,
बहुत प्रशंसित शोभा।
चारों ओर नील मनि पर्वत,
अति अपूर्व है शोभा ॥

नील कंठ नग गये तहाँ तें,
मुनी रही छवि जाकी।
चहुँ दिसि नीलम के नग जिनकी,
महाविष्णु की झाँकी ॥

ता बिच मौडति मौडति सरिता,
कै किलोल कल कल की।
कबहुँ श्याम गिरि की छवि धारत,
कबहुँ छबीली छलकी ॥

कबहुँ चन्द प्रतिबिंब धारि कै,
चंचरीक अनुसरती।
कबहुँ भानु को भास्वर सारी,
धारि चौंध चख करती ॥

यों बहु भाव दिखाय मुग्ध करि,
प्रेम प्रचुर हित मानिनि।
मुरति दुरति धारत तेहि पाहन,
मानत नहिं सर गामिनि ॥

सुधि करि नग-प्रियतम की,
विरह विधुर ह्वै मार्ती।
सीकर मिस उठि सुठि प्रिय नग सो,
भेटि जुड़ावत छाती ॥

भयो मुग्ध सर देखि विधुरता,
स्नेहलता सरिता की।
देन लग्यो आश्वासन यहि,
अरु परिचय दक्षिणता की ॥
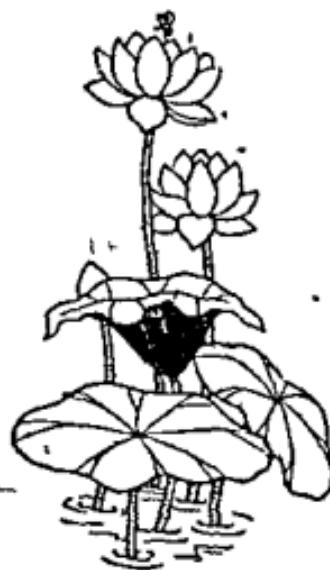
कुलटा सी नग सों अरु सरसों,
सरिता नेह निभाती।

समझ्यो सर याको प्रतिरूपा,
मानौ द्रुपद-सुता की ॥
ऐसो सर विच सौंध वनो इक,
उज्ज्वल उत्पल वारो ।
मरकत मणि चित्रित विचित्र अति,
दर्शनीय छवि न्यारो ॥

दोहा

ऐसो सौंध विचित्र मैं, रहे अनेकन मास ।
दुलहिन सँग दुलहा रह्यो, दुलहो दुलहिन पास ॥

सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥

सत्रहवाँ सर्ग

जात-कर्म

छन्द बिहारी

'सचय अति है शीघ्र मुझे, समिधा करना ।
है दुष्कर, उद्दालक, अति, जिसका करना ॥
किंशुक हैं चारो दिक अति, फूले सुन्दर ।
पशुता है छेदन इनका, अति दारुणतर ॥
सचय हो सूखों का जो, सूखे सत्वर ।
रुष्ट न हों मुनिवर जिससे, निज शिष्यों पर ॥
सत्वरता ऐसी क्यों है, ज्ञात न हमको ।
वृत्तात कहो मांडव जो, सुविदित तुम को ॥
अनुपस्थित क्या तुम थे कल, समय होम के ।
विदित कराया था मुनि ने, दिवस सोम के ॥
मामिनेय के जात-कर्म हित, जाना हमको ।
त्वरिता योजन करो सभी, हो देर न हमको ॥
अनध्याय है चलो चलें, गन्धर्व नगर ।
बड़े भाग्य से अनायास, आया अवसर ॥
"हुआ पौत्र कोशलपति को, क्या कहा नहीं ।
हृदय सुहर्षित मेरा है, सुन कर अतही ॥
मर्त्यलोक है यहाँ कहाँ, गन्धर्व नगर ।
दिव्यलोक मे पौत्र हुआ, यह विस्मय कर ॥

सुनते हैं गन्धर्व नगर, नितरा ललाम।
नर नारी है सुघड परम, प्रशसित धाम॥
पारगत हो, माडव, क्या तुम को करना।
बसो वहीं गुरु आज्ञा ले, फिर क्या फिरना॥
भोगो सुख गृहस्थ का नित, गन्धर्वों में।
होती नारि मनोरम, सुन्दर सर्वों में॥
"अयि! उद्दालक असम्भाव्य यह, तुम बालक हो।
अहि कुल नकुल साथ क्या जब, वह घालक हो॥
हम तो मर्त्य अमर वे यदि, सबध करें।
क्यों वैरव्या दायक हो, मति अध करें॥
व्यर्थ अनर्गल बात करो, मत उद्दालक।
वहाँ पहुँचना बडा भाग्य है, सोचो बालक॥
"तरु चन्दन, पास वास पा, होते चन्दन।
क्या अमरत्व न देंगे सुर गायक नन्दन॥
माडव, कितने हैं शाश्वत, जीवन पाते।
पुराणादि में कथा विविध, मुनि जन गाते॥
जीवन में अवसर फिर कर, फिर कब आता।
अवसर अलभ्य आया यह, मर्त्य न पाता॥"
"पर्याप्त हो गई, समिधा, चलना सत्वर।
सम्भव उत्सुक होते, हा, अब मम मुनिवर॥"

वेदान्त और नास्तिकवाद

'है बालादपि सुभाषितम्' मान्य सदा मत।
विश्लेषण पर करो असत, में जो हो सत॥
जीवन धेय विलास-मात्र, क्या उद्दालक।
ऐन्द्रिक तृष्णा तुष्टि सौख्य, भाता बालक॥

तरणि तेज को देख तृप्त, हों अज्ञानी।
सूर्य-सत्व देखते सदा, जो विज्ञानी ॥
गोचर से परे पुरुष, हैं अविनाशी।
है ज्ञान उसी का पाना, करवट काशी ॥

क्षुद्र काम के अर्थ बना, है क्या जीवन।
आत्म-ज्ञान है धेय सभी, विधि आजीवन ॥
देखो गुरुवर दमन किये, पचेन्द्रिय सुख।
मुक्त पुरुष सम विहर रहे, हो अन्तर्मुख ॥

उद्दालक ! बालक हो भक्ति, करो गुरू में।
सरिता ज्ञान उदय होती, गुरु पद गुरु में ॥"
"माडर ! बड़े विज्ञ शिक्षित, तुम हो बुधवर।
षट शास्त्री हो पारगत, वैदिक श्रुतिधर ॥

बाल बुद्धि यों कहती जो, इन्द्रियगोचर।
योग्य वही है भोग्य वही, जीवन सुखकर ॥
सृष्टि सृजा है स्रष्टा ने, उपभोग लिये।
विपरीत त्याग है काया, को क्यों दलिये ॥

भोग त्याग है स्रष्टा का, गाढापमान।
भोग्य प्रकृति का भोग यही, उसका सम्मान।"
"चारवाक अनुयायी हो, तुम उद्दालक !
प्रकृति भोग के इससे तुम, हो प्रतिपालक ॥

भोग इन्द्रिया के क्षय का, कारण जानो।
जरजर तन अशक्त होता, रोगी मानो ॥
भोजन में जिस प्रकार है, यम आवश्यक।
वही मार्ग सब सुख का है, हे उद्दालक ॥

वाद विवाद पुन. होगा, तुम हो बालक।
सौम्य भाव से चलो शीघ्र, अब आश्रम तक ॥"

देख्यो मुनि तुम्बुरु ज्यों, माडप आवत।
बालक आये ठीक समय, बोले तावत ॥
चलो उपस्थित है विमान, माडव सत्वर।
शिष्यों को तुम कहा चलें, मेरे सँग आकर ॥

ॐ

चढ़ि कै विमान सब शिष्यन, लै कै मुनिवर।
पहुँचे नगरी गन्धर्वन, की वै सत्वर ॥
उत्सव-छवि समधिनि मानौ, नगरी दुलहिन।
गूथ्यो केश तरुन कुसुमनि, सो चित्रित तिन ॥
चूनरी ध्वजा पताकन की उन पहनाई।
नूपुर किंकिनि बाजत हैं, जनु सहनाई ॥
बन्दी बन्दनवार रुचिर, दै बाँका तब।
किन्नर नारी बनी ठनी, हैं सखियाँ सब ॥
चहल पहल बहु चत्वर है, पुहपन चित्रित।
अगुआनी मैं वासी सब, ठाढे सज्जित ॥
ससम्भ्रमनि उतरत विमान, मुनि शिष्यन के।
अर्घ्य पाद्य मुनि ग्रहण कियो गन्धर्वन के ॥
गये यज्ञ मंडप मैं सब वेद सुघोषित।
जातकर्म नव जात किये मुनि स्मृति पोषित ॥
मरुत्त नाम दीन्यो मुनि, भामिनि सुत को।
दियो अमोघाशीष विविधि सुरसंयुत को ॥
विशद बुद्धिवर, बाहुबली, हो धार्मिक मन।
एक पत्र शासन तव हो, शरद अनेकन ॥
इन्द्र आदि सब लोकपाल, सप्त ऋषी सब।
स्वस्तिमस्तु शुभमस्तु, सदा शत्रुजय भव ॥

पौर्व मरुत नीरज हो शिव, देवै तुमको।
दक्षिण मरुत आयुदायक हो नित तुमको॥
पश्चिम मरुत, पराक्रम दे, ध्रुव धीरों से।
उत्तर मरुत मारुती सम, कर वीरों मे॥
कला षोडशी कौशल सब, तुमको आवै।
हो उदान्त सब सरक्षक, दुरित दुरावै॥
सत्य धर्म के हो पालक, अरि दुखदायक।
अप्रमेय हो बल-पौरुष, महि सुख दायक॥
हो रंजन प्रजा, हितेच्छू, मानव नायक।
धर्मधुरीण, धर्म गोप्ता, धर्म विधायक॥
आशिष दे कह्यो चलो अब, दर्शन करने।
कुलदेवी, देवि शारदा, आशिष धरने॥
गे सबनि शारदा मन्दिर, मुनी पुरस्कृत।
पूजन सामग्री लै सब, वाद्य अलङ्कृत॥

श्री शारदा

शुभ्र वसन माला कुसुमन, सित उर सोहत।
स्मित रंजित अमलानन सा, भक्तन मोहत॥
कलित-कल्पना-हित कवि कुल, जा मुख जोहत।
सुर सिंगार बीना सुर स्तुति, सुर गन मोहत॥
भव्य भावना कुडल, कच जनु वक्रोक्ती।
देवि भारती धारत हैं, श्रुति वेदोक्ती॥
भक्तिभाव आविष्ट गये, उनके मदिर।
गधर्व अप्सरा भामिनि, सब जाय अजिर॥
नृत्य गान सँग पूजा कै, कीन्ही उनकी।
धरयो मरुत को भामिनि पद, पै रज उनकी॥

ह्वै प्रसन्न लै शिशु गोदी, मैं वीना लहि।
आशिष वचन दियो लालन, को रागन महि ॥

राग धनाश्री

मञ्जुल मरुत्त हो तुम मोहन।
जनक तुमारो स्नेह करैगो मैं करि हौं तुव छोहन।
दैहौं बुद्धि विचार विशद यश, नृप होवा महि दोहन ॥
पालन करिहो प्रजा स्वसुत लौं, कै दुख दुरित विभंजन।
एक पत्र साम्राज्य लहोगे, के वैरिन मद गञ्जन ॥
सत्र सत्रजित से हू उत्तम, करि हौं मम प्रिय सोहन।
कोशल कीर्त्ति कलाधर मानौ, बाढै मञ्जुल मोहन ॥

बिहारी छन्द

उल्लासित भामिनि असीस, लहि गहि चरनन।
स्नेह अश्रुअन धोये पद, करि यश बरनन ॥
करि प्रनाम कोशल सुतहू, सीस नचाये।
आजन्म दया की भिक्षा, उनतैं पाये ॥
कह्यो शारदा अब जाओ, तुम कोशल को।
पूर्ण प्रतिज्ञा भई पिता, देवौ सुत को ॥
दिनन दिनन सौं मातु पिता, तुम को जोहत।
उनको विरह निवारन हैं, सुत को सोहत ॥
भामिनि जाव सासु तुमरी, जो है वीरा।
है बड़ी वीर छत्रानी, नारिनि हीरा ॥
पौत्र खिलावन आसासों करी तपस्या।
शरद बिताते पूर्ति भई, नही समस्या ॥

इत चेष्ट जनक है आतुर, तुमरो भामिनि ।
नहिं जानत गये दिवाकर, बीती यामिनि ॥
तुमरे दर्शन सों पुनि स्मृति उनको ऐहैं ।
पाय सुता दौहित्र महत, आनंद पैहैं ॥

पुत्री विरह

दुखित पिता के हिय को नहि जानौ भामिनि ।
निर्जीव उजाड विरह में, मन होवै तिनि ॥
हिय ग्रन्थिनि कछु कन्तत जनु, कटक करकत ।
धधकि धधकि हिय उठत अनल लौ लव लरकत ॥

प्यार करत सुत तन मन को, सपदि विलावत ।
दिवस निसा मय, सोम अनल, सम हिय भावत ॥
ह्वै भार भूत जीवन तौ, सूनो लागत ।
ज्ञान बुद्धि कर्पूर, वासवत नभ पागत ॥
भामिनि अब जननी हौ तुम, सब जानौगी ।
सन्तति विरह दुसह को तुम अनुमानौगी ॥
अब राज दुलारी भामिनि, जावौ कोशल ।
निज पिता विचारै हिय को, करि हिम शीतल ॥
पुनि अभिवादन करिकै, सब चले नगर को ।
बजत बधायो नय बाबा के सब घर को ॥

पुत्री विदा

बरवै

कण्व मुनी सम आरत, हैं नय आज ।
जनु विदेह देही सम, मैथिल राज ॥

विदा पार्वती म हे, जिमि हिमवान ।
अश्रुपात जनु सरिता, ह्व विलगान ॥
अश्रु गिरावत नय हैं, प्रमथित नेह ।
धरत पठावत तनहू, निश्चल देह ॥
जो पायो सब पठयो भामिनि गेह ।
त्याग मूर्ति होवे जन परिभूत नेह ॥
गीत रागनिसि वासर, जह का आनि ।
तोष आशु रोदन में पावत प्रानि ॥
करत प्रबन्ध विदा का भयो विहान ।
जुरे सबै नय साथी आँगन आन ॥
अभिवादन देवनि करि कियो पयान ।
कोशल चलिबे हित सब चढ़े विमान ॥

सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ।

अठारहवाँ सर्ग

पौत्र-मिलन

सार छन्द

बरस बरस लौं बीत्यो वासर,
युग समान प्रति मास ।
पात्र फबीलौ फागुन बीत्यो,
उत्सव हीन उदास ॥
चैत चाँदनी चली गई तौ,
गई विसाखा रजनी ।
जेठ ताप मैं अतुल अथै अति,
झुलसायो जिमि अगनी ॥
आसाढ-विष्णु आयो सुनि,
ताप ग्राह सों पीडित ।
जलद-गरुड सम लखि निज नाथहि,
दौरि पर्‌यो ह्वै क्रीडित ॥
वारि धारि घर्षण करि आतप,
कृषिकन को हरसायौ ।
सुत वियोग उत्तप्त जनक हिय,
ताप न तनिक नसायो ॥

सुन्यो वहै सावन को आनो,
गयो सावनी मेल्यो ।
भादौं के तर्जन गर्जन को,
प्रलय काल लौं झेल्यो ॥

केश काश सकाश संवारे,
प्यारो आश्विन आयो ।
पलिहर भूमि दिखायो कातिक,
दीप अनेक जरायो ॥

अगहन गहन भयो वितिवो अति,
पूस हूम सम भारी ।
गे कोशल जन माघ न्हान को,
पाप विनाशन कारी ॥

दुखित करधम रहे जोहते,
सुत आवन की वेला ।
फागुन को आवत पुनि देख्यो,
धरे रसिक सिर सेला ॥

पै सुख साजन पुत्र अचीन्हित,
यश भाजन सुत प्यारो ।
बरस दरस हित तरसि बितायो,
अजहु रह्यो वह न्यारो ॥

पाइ ब्याह सूचना चाह चित,
चढ़ी बढ़ी उत्सुकता ।
विवस बनाय लालसा लागी,
बधुवर दरस विकलता ॥

आशा

आशा वशी कर धरे, जोहत कोशल राज।
आशा चिन्तामनि मनौ, राखत जीवन साज ॥
आशा लहि चातक जियँ, जियँ कृषी जन लोग।
कबहूँ ऐहैं घन घुमडि, पाउब जल सुख भोग ॥
आशा सों सरसिज जिअत, सहत दु:ख हेमन्त।
करिहै कबहुँक तो दया, नेही नवल बसंत ॥
आशा माला कर धरे, जोअत साधू संत।
दर्शन पइहौं अवसि ही, यदपि अलख अनन्त ॥
अमर वैद्य आशा गुनौ, मृत सजीवनि याहि।
गुन लौं जीवन नाव को उदधि उतारत जाहि ॥
आशा निर्गुन है यदपि, तदपि गुननि की खान।
निर्गुन लौ गुन को सरसि, सिरजै जगत महान ॥
आस अपर्णा परण सम, जल फल मूल बिहाय।
तपति तपति तप युगनि लौं, वसी सभुतन आय ॥
आस अहिल्या गहि रही, धारे अचलज देह।
ह्वै चल, पायो राम को, पावन पावन नेह ॥
सबल आस को धारि हिय, सफल तपस्या लीन।
भूप भगीरथ गग लहि, पितर उधारन कीन ॥
ऐसी आशा अटल लहि, उर बिसास अतिधीर।
वीरा महरानी रही, जोहत निज सुत बीर ॥

सार छन्द

आय कंचुकी बिखरे कुंतल,
बोल्यौ साँस सम्हारी।

पडत जान आता मायावी,
दनु ले सेना सारी ॥
दिशि उत्तर से श्वेत चमत्कृत,
महा विमान विधूनित।
उडे वेग से देखा आता,
वैनतेय सम आकृति ॥
तमकि उठो महराज करन्धम,
कवच शरासन माँग्यो।
महा नाग लौं फन फैलाये,
ठेस पाय जनु जाग्यो ॥
सेनापति से कहो हमारी,
द्रुततर आज्ञा जाकर।
सेना को प्राचार चतुर्दिक,
सज्जित भेजै सत्वर ॥
राज द्वार पर सविधि करेंगे,
हम निज रिपु का स्वागत।
देखै दनु क्या हमसे पाता,
पूजा अरि अभ्यागत ॥
यो बोले सम्राट करन्धम,
रोष रूष्ट अति क्रोधित।
यह दनुका दुस्साहस देखो,
बिना किये अवरोधित ॥
अच्छा देखें विपाक क्या है,
यों कह धनुष उठाया।
आखंडल ने यथा खमंडल में,
निज चाप चढाया ॥

तमकि तड़ित सी उठि प्रत्यचा,
रवि-कर-शर कर आया।
ज्या निनाद ने पूर्व इसी के,
जग को बधिर बनाया॥

इतै शरासन पै कर धरिकै,
नृप नै लियो निशानो।
उतै अवीक्षित नै विमान पै,
श्वेत पताका तानो॥

श्लाघ्य करन्धम कर लाघव अति,
सित ध्वज उठन न पायो।
खंड खंड ध्वज दंड बाण सों,
है नभ मैं लहरायो॥

यो लखि बिलखि अवीक्षित बोले,
पाहि पूज्य पितु हाँ हाँ।
है अवध्य हम तनुज तुम्हारे,
हारे तुम से हाँ हाँ॥

सुनि यह गिरा निहारि ध्वजासित,
नृप नभ नैन लगाये।
कर इक माथ माथ, पै राखे,
अरु कोदंड उठाये॥

रहे अवाक, न व्योम वाक हू,
अवगति करि कछु पाये।
घोर रोर करि कुपित उरगला,
सैनिक पुर तैं धाये॥

द्रुत-गति-गामी व्योमयान पर,
उतरि अवनि पै आये।

अब न अवीक्षित रहे अवीक्षित,
प्रेम परीक्षित धाये ॥
लखि सुत निज, नृप तुरत धनुष तजि,
उर उल्लास उराये ।
सजल नयन, पुलकित तन हुलसित,
हिय अति आतुर धाये ॥
सुठि सुपूत पद पूत पिता के,
धाइ गहे अकुलाई ।
सुत बियोग उद्विग्न राम ज्यो,
लव उर लियो लगाई ॥
जरति बिछोह ज्वाल सो हीतल,
सीतल नृप करि पाये ।
इन सिर सूँघि लह्यो सुख त्यो त्यों,
ज्यों ज्यों उन सिर नाये ।
छजति लजति घूघट के नत मुख,
नव मुख मन मढ़ि मोदनि ।
जोरि, जुराइ, हाँथ निज शिशु सो,
धर्यो ताहि नृप गोदनि ॥
अतुल अलभ्य अमोल पाय नृप,
बाल भाल मुख चूमे ।
ले सँग आगत जन जुहारि नृप,
मुदित महल प्रति घूमे ॥

❀

फैल गई सौरभ सी चहु दिसि,
समाचार मनभावन ।

सुत समेत युवरानी दुलहित,
दुलहा निज गृह आवन ॥
झरन लगी नौबतखाने सौं,
शहनाई मंगल धुनि ।
घहरन लगी शतघ्नी शत शत,
चहुँ दिसि पुर में पुनि पुनि ॥

गावत मंगल गीत सुहागिनि,
लये हरदि दधि चाउर ।
द्विगुणित भाग भये, लै आईं,
वधू पौत्र जिमि पाहुर ॥
चलो चलें दुलहिन मुख देखें,
डारि हार हिय गावें ।
लाल लाल लल्ला के गालन,
केसरि मलय लगावें ॥

कस्तूरी को कज्जल सजि कै,
ढारि कनक की पेटी ।
देहु दिठौना भाल लाल के,
लगै न दीठहु हेटी ॥
'फिला गुरी' को हार हिये विच,
पैजनियाँ दे पायनि ।
कठुला कठमाल मोतिन की,
गेरि गरे चित चायनि ॥

झुन झुनियाँ घुन घुनियाँ देऊँ,
बाधी मुट्ठी खोलूँ ॥
ठोढ़ी पै ठुमकी मैं दै दै,
मटकि मटकि कै बोलूँ ।

हँसि हँसि लादि, हँसावै हिय भरि,
हँसनि बालकी नीकी ।
हरै हरै हिय, देइ कछू कोउ,
परै और सब फीकी ॥
भार मिठाई विविध भाँति लै,
चले प्रजागन हरसित ।
भरे मटकना दधि सौं, मटकति,
आभीरिनि मुदमादित ॥
फूल माल सब भरे चॅगेरिन,
कमल अमल बहु लै कै ।
सुर सैन्या मदिरा सुरभीली,
स्फटिक घटन मैं दै कै ॥
नारिकेलि तै भरी वाहनी,
कदली घोदन भारी ।
हरी मटर के भरे शकट बहु,
चने हरे चटु कारी ॥
निज निज समय समानुकूल सब,
लै लै चले उपायन ।
राज द्वार पै जुरे जाय कै,
नर नारी सुठि भायन ॥
राज सचिव द्वारे हैं ठाढ़े,
स्वीकृत करत उपायन ।
देतो बसन रजत अरु काचन,
देखि यथोचित वायन ॥

प्रमुदित प्रजा गई प्रांगण मैं,
जहँ की अकथ कहानी ।
जुरे तहाँ बहु साहु मुसाहब,
महिषी मान्य महानी ॥
कलाकार कौशल के मानी,
गायन वाद्य विहारी ।
भली मंगलामुखी की जिन पै,
नृत्य कला बलिहारी ॥
विधु वदनी सुतनी सीमन्तिनि,
परम विलासिनि बाला ।
रतनारे नयनन मैं माध्वी,
परै न इन सों पाला ॥
बंक विलोकनि मैं सब चतुरी,
मधुरी गायन बानी ।
उकसि उरोज ओट सों उमगत,
रसिकन को ललचानी ॥
बैठे तहँ गन्धर्व अप्सरा,
जे सब आये नय संग ।
तेऊ तिन्हैं निहारि हारि हिय,
मुग्ध भये लखि रंग ढंग ॥
कथक कलावँतजामा पहिरे,
टोपी जरी झुकायें ।
कोऊ पट्टा कोऊ काकुल
सुरमा नैन दुलायें ॥

वनकुल नावनिहार लगति ग्रति,
नर जनु बने लुगाइ।
ग्रोढ़ ग्रतीव मोढ़ कपनी पै,
मुहँ चढ़ि वर चुगलाईं॥
माँढ़ि मडेरिया मैन्यिा हैं
पातुरीन को वेढव।
नजर बचावत हैं इन तें वै,
जानत इनकी सब ढब॥

जाहित कियो किमिच्छिक ब्रतनित,
वर वीरा महरानी।
जाहित सुत सो भिच्छा माँगी,
राज वरन्धम मानी॥
जाहित कोशल सुत बन बरमे,
कियो प्रतिज्ञा त्यागन।
जाहित विरह व्यथित कोशलपति,
विनिये मास ग्रनेकन॥
सोईं पाय पौत्र कोशलपति,
महरानी निज व्रत फल।
भावी भूप प्रजानिज पायो,
मातु पिता जावन फल॥
ग्रभिलापा सबकी परिपूरित,
सब सुख लहि इतराते।
चिन्ता को कै दाह चिता पै,
प्रजा प्रजापति माते॥

सुरा सोमरस छकि छकि पीवत,
पीवत विजया कोऊ।
सेवत व्यंजन मादक बहु विधि,
जाके जिय रुचि जोऊ॥

चारु चटपटी भोज्य वस्तु बहु,
सकल सुलभ तहँ बहु विधि।
रचि रचि रुचि अनुकूल रचाये,
रोचक भोजन जनु निधि॥

खान पान कै वृन्द प्रजा गन,
पहुँचे सब रँगसाला।
समारोह जहँ नृत्य गान को,
कौतुक कृत्य रसाला॥

गायक

चोंचदार सापा सिर बाँधे,
बीना रदे बजावत।
मींड देत अँगुरी अरु गर तें,
लवका गिरह भुलावत॥
एक बार गिजराब मारिकै,
खींचत सुर पहिनावत।
साधारन जन जानत मानौ,
बछवहि गाय पिन्हावत॥
तन्नी के नाता ग्रीवा निज,
मुरकी संग मुरकावत।
जानि पड़त जनु बिना बीन कै,
गर तै बीन बजावत॥

बाल नर्तक

सौभाग्य भयो जनता को अति,
आयो बालक नर्तक।
छुम छुमाय कै कृष्ण बनक लहि,
कामिनि काम प्रवर्तक॥
कर में नहीं बाँसुरी बाँकी,
तऊ त्रिभंग ह्वै ठाढ़ो।
नटन कियो वसी बज लीला,
भक्ति भावना गाढ़ो॥
रास नृत्य रसमय तन्मय करि,
द्वापर दृश्य दिखायो।
भक्ति भाव आविष्ट काउ उठि
माल गरे पहिरायो॥

नर्तकी

नील निचोल धारि इक नर्तकि,
तहँ पाछे तें आई।
जानि पर्यो जनु गोपी कोऊ,
हरि सों करत मिताई॥
अन्तर्धान भये जनु माधव,
नाचत चहुँ दिसि खोजति।
चकित मृगी सम चंचल चितवन,
चित दर्शक को मोहति॥
ठिठकनि तैं हिय टेस लगावति,
छमछम कै धुनि बूझति।

पाय न उत्तर उनसों कोऊ,
बंक विलोकनि वेधति ॥
तायेई तायेई नाचत,
लंक लचकि लचकावति ।
उफकत मुकत झाँकि उर परसत,
हिय दर्शक कसकावति ॥

गायिका

दर्शक जनहि विहाल देरि कै,
पठयो सुषमा नायक* ।
गुनी गनी गनिका मन भावन,
नर्तन मोह विलायक ॥
छोड़्यो सुर सिंगार पै सारँग,
सारँग सम मन मोहक ।
भागि गई वैसइक भावना,
उर रतिरस आरोहक ॥

राग सारंग

मोहन भूल गये तुम मोहन ।
जा मोहनि, सों मोह्यो गोपिन, फिरति रही तुव जोहन ॥
फिरति मुग्ध राजा नर, नारी, विकल होत विरही मन ।
कौन हर्‌यो तुव मन्त्र मोहनी, उन जादू की पुड़ियन ॥
तजी यहीं तुम बांस बसुरिया, याही सों तुम बेमन ।

---

* सुषमा नायकउत्सव प्रबंधकर्त्ता

पुनि आवौ भारत है आरत, बसी देहु अनेकन।
टेरौ पुनि तुम मन्त्र विमोहन, करो एक भारतायन।
सद्‌विचार से हीन भये यह, कलह करत ये प्रतिछन।
बिना आपु के एक न होइहैं, बिना एकता निर्धन।
आपु दुलारो भारत आरत, हीन देश के सब जन।
कछुक न आशा हिये इनके अब, दया करौ करि छोहन॥

सार छन्द

साधु साधु नरबस मुख निकस्यो,
भक्ति मुग्ध श्रोतागन।
रजत पालनो मै शिशु आयो,
आगे आये मुनि जन॥
मंगल पाठ करत वेदध्वनि,
शंख ध्वनि तुरही कूजन।
कोशल राज करन्धम आयो,
परवृत सब मन्त्रीगन॥
पलटो वातावरण सभा को,
जय ध्वनि प्रजा उचार्‌यो।
कीर्ति गान बन्दी चारन करि,
राई नोन उतार्‌यो॥

मनहर घनाक्षरी

पालक समाज नित पालक प्रजा के प्रिय,
सब कौ समान मान, भेदभाव राखौना।
नीति नय नागर, सनेह सीलसागर हौ,
करुना कृपाकर, कदापि मन माखौना॥

दुख सुख आपनों प्रजा को दुख सुख जानि
प्रेम में निरन्तर ही अन्तर हू राखौना।
देवता समान पुन्यवान आपु वैसे तब,
है के पुत्र पौत्रवान, स्वर्गसुख चाखौना॥

×

आशा पाते सुषमा नायक,
भांड भूत तब आये।
लक्ष्मणपुर के प्रसिद्ध वै,
सारी सभा हँसाये॥

भांड

अहा अहा हा हमहू आये।
घोड़ा तुरकी हम है लाये॥
सुतुर सवारी है हित राजा।
खर खच्चर परजा हित साजा॥
नन्हा नाचा नटखट खोटा।
नाचन में बेपेंदी लोटा॥
करो पुतरिया मन मत मोटा।
तुमरे संग होवै यह जोटा॥
ललचाओ ललचाओ आओ।
बिन उरोज के उर उचकाओ॥
सहन कठिन याकी मटकनि है।
हाय गजब याकी सटकनि है॥
आह! आह! है वार किया इत।
मेकलता की पीर दिया तित॥

आओ आओ इनहिं सताओ।
भीर वीर पै तीर चलाओ ॥

⚜

वह निकसि परी मेरी पुतरी।
है चमक गई घन में उजरी ॥
छेड़ दिया क्या गीत चुलबुली।
पड़ा जिगर में आह हलचली ॥

(धोई आई जमुना तीर, झुलनिया में नजर लागी) की लय

लागी नजर मोंहि मायरे,
कैसी तु सुरमा लगाई।
चोली बन्दा टूटि गये रे,
लो मोहि गोदी छुपाई ॥

⚜

किया नजर ने नीचा ओला।
हाय! निकाला उसको मोला ॥

⚜

लागी नजर मोहि माय रे,
कैसी तु सुरमा लगाई।
चोली बन्दा टूटि गये रे,
लो मोहि गोदी छुपाई ॥

⚜

हाय ! है नजर ने छिपा दिया ।
देखो जोवन को घुसा दिया ।
रोओ मत अब मेरे मुन्ना ।
लेना लगा अजी दो गैना ॥
अब आती है तेरी मैया ।
जीमार बहिनिया भी दैया ।
देखो निज मैया का करतब ।
राजा को देगी अब अरदब ॥

⚜

उई उई करते भागे तजि,
भाँड साँड रग साला ।
हँस्यो हँसायो, सुन्यो सुनायो,
पायो साल दुसाला ॥
झुरमुट बाँधि झनाझन आई,
सामान्या रतनारी ॥
लचकत उचकत बक विलोकत,
साज बाज करि भारी ॥
इक इक नर्तन करति विलग ह्वै,
पुनि मिलि गावै सोहर ।
ठुमुकि ठुमुकि चलि जाहि लला ढिग,
बलि बलि होहि निछावर ॥

⚜

(धनि भादव की रात, धन्य वह रोहनी) की लय

मगल मगलवार, तिथी वह थी घडी ।
लालन को ले आय, सुहागिनि है बडी ॥

बाढ़ौ नित नित लाल, निहाल करौ सबै।
कोशल माग विकास पौत्र आयो जबै॥
बाबा गोद विशाल करौ बड़ा अबै।
दादी होय निहाल परसि तौको जबै॥
मातु पिता के नेह, सलिल सों नित बढ़ौ।
बिकसे कीरति जगौ, इन्दु निधि सों कढ़ौ॥

छन्द मुक्तमणि

दियो इनाम राजा ने,
रजत हेम की मुद्रा।
दिया प्रजागन भूमि यह,
तोषित हृदय अक्षुद्रा॥

अठारहवाँ सर्ग समाप्त

पूर्वार्ध समाप्त

उत्तरार्ध

उन्नीसवाँ सर्ग

मरुत बाल्यविलास

रोला

चलो जात है समय, वेग सों जानि पड़त नहिं।
आजु गयो कल आय, गयो तब पुनि आवत नहिं॥
गयो गयो तब गयो भयो, जनु कथा कहानी।
नयो नयो नित नयो, दरस लावै लासानी॥
असन बसन में अदल, बदल है करत यथा रुचि।
नयो ढंग ते नयो रंग नित नवल नवल रुचि॥
वृद्ध जनन मैं राग, करत है अति उद्दीपित।
युवक जनन ह्वै जात देखि कै अति विस्मित॥
पहिरत बूढ़े लोग, मिरजई अरु सिर पगरी।
लरिके उनके कोट, पेन्ट अरु टोपी बड़री॥
झुलवा कंचुकि कसी, त्यागि अब पहिनै नारी।
ब्लाउज साया घड़ी, और अति झीनी सारी॥
कुढ़ कुढ़ सब कुढ़, कछुक नहिं समय विचारत।
अपनोई यह करत, रहत नित परिवर्तन रत॥
राम राज दिखराय, दिखावत नादिर साही।
जौहर जाय जलाय, यवन लावत बदराही॥
कटत सटासट मूँड़, पशुन बलि हित यागन में।
लावत धर्म अहिंसा, को प्रतिपादक जन में॥

कादरता लखि जगत, चलायो शङ्कर मत को।
चीन अहिंसा भगी, जानि अक्षम भारत को॥
रामानुज को जाति भद, उय हेतु पठायो।
तिन क द्वारा विष्णु, अर्चना मत चलवायो॥
उलटि फेरि पुनि करत, राज यवनन को पलटत।
सप्त सिंधु करि पार, इहाँ गोरन को पठवत॥
बडे बडे विज्ञानी, या को मरम न पावत।
अविदित भावी भरम, माहि सब को भरमावत॥
करत समय यहि भाँति, जगत जीवन परिवर्तन।
समय मच पर होत, नृत्य मानव नट नर्तन॥
सो परिवर्तक समय, अभय बसि मानव तन म।
रूपान्तर रचि विरचि, करत लीला छन छनम॥

⚜

जननि पयोधर पिअत, मरुत्त साइ धुटुरुवन।
धूरं लिपटायो ताहि, मलिन करि तासु दुकूलन॥
बाबा मानत मोद, गोद धूसरित मरुत लै।
मानत निज को धन्य गोद निज सुत को सुत लै॥
किचकिचाय काटन में, चुम्बन का सुख पावत।
पै वा बरजति चेरि, तरेरि स्वभौहैं दिखावत॥
ताकी कल किलकारि, अमिय जनु स्रवननि ढारत।
तोतरि बोल अमोल, बिसारेहु नाहि बिसारत॥
डगमगात डग धरत, डरत किंकिन किनकावत।
टेरत बाबा लला, हिराये हेरत आवत॥
काकर पाथर लाइ, आइ बाबा कर गेरत।
देत गिरै पुनि तिन्है, बीनि कर धरि धरि हेरत॥

आरि किये चुमकारि, देय खेलन भजि जावै।
। सुनत बेर ला टेर मोद तजि गोद न आवै॥
कौतुक कार्मुक खैंचि, खगन पै तीर चलावत।
भुन झुनियाँ झनकाय, झमकि टट्टू पै आवत॥
बाधे तिरछी पाग, लये असि कर चमकावत।
शिशुता के दिन गये, किशोरक बासर आवत॥
बालसखा ले साथ नाथ बनि कहुँ सेनापति।
निज सीमातिक्रमण, आक्रमण करत अरिन प्रति॥
सखन साथ नरनाथ, यश की नकल उतारत।
घास पात की अग्नि, ताहि मैं आहुति डारत॥
फोरि फोरि फल दीन, दक्षिणा दीन द्विजन को।
क्रीडन हय गय देत, सविधि भूयसि हू तिन को॥
राजसूय वह करत, साथियन भूप बनावत।
अपनो टट्टू छोडि, रीति वह यज्ञ सिखावत॥
हेरत जाय अहेर, सखन लै नृप उपवन मैं।
काटि नारियर लाय, दिखावत निज परिजन मैं॥
ऐंठि कहत आखेट कियो हम तो हाथी को।
दन्त तोरि तेहि कै, उदन्त दीन्ह साथी को॥
देखत भव्य भविष्य, गुनी ताके विनोद मैं।
खेलत नृप अप्रतिम, यही शैशव सुगोद मैं॥
आन बान कुल कान, शान बालक यह राखै।
जानि परै उन अभिलाषन सों जो अभिलाखै॥

❦

गये खेल के दिवस पढ़न के अब दिन आये।
भूप जनेऊ कै अकोल ऋषि बोलि पठाये॥

कण्व मुनी को शिष्य बडो अकोल वेदवित।
पडित सिद्ध प्रसिद्ध, पठन-पाठन पाटव वित ॥
ऋषि अकोल को आदर, अनि दे पूजा कीन्हीं।
सौंप्यो अपनो मरुत्त मनोनज सरवस दीन्हीं ॥
साथिन सग मरुत्त गयो आश्रम वहिं मुनि के।
राज सदन ह्वै गयो अँधेरो जाते उनके ॥

⚜

धूम धाम बिन धाम न हा हा परै सुनाई।
कोउ प्रहरा के करन, हरन असि करत न धाई ॥
रह्यो नहीं अब तहड बहड को करनै वारो।
नही रह्यो अब कोउ, अलभ्य को माँगन वारो ॥
भृत्य भर्त्सना करन हार अब रह्यो न कोऊ।
देखो नारा बोलत, डरावन हार न कोऊ ॥
दाढी मोछन को न, रह्यो अब कोउ खिचैया।
निज सिर बाँधन काज, न कोऊ पाग खिचैया ॥
अब नहिं चीलबिलाव, दिवारन पै कोउ खाँचै।
बाना को करि अश्व बैठि नहिं कोऊ नाचै ॥
हँसी खेल की रेल, मनो कोशल तै छूटी।
टेशन मास्टर भूप, भये आकुल बिन ड्यूटी ॥
भामिनि रहत उदास, मनौ खोयौ हीरामनि।
व्रत प्रदोष वह धरति, करति गौरी पद पूजनि ॥
कोशलपति सुत सुवन, खेल की चरचा चरच।
एकाकी नसि बैठि, देवि चिता को अरचैं ॥

✱

समय समय पै जात, बहू सग ताको देखन।
प्रसन्न, प्रशसित ताको, मुनि मुनि होतो मुनिसन ॥

होत तुरत व्युत्पन्न, जात जो इसे पढाया।
पूर्व जन्म में पठित, लगै जनु हृदय उराया॥
है यह शर सन्धान कुशल लीनिये परीक्षा।
है इसकी चल लक्ष्य, भेद म सिद्ध समीक्षा॥

मान्त्रिक शस्त्र प्रयोग, सविधि सवर्तन सिच्छा।
सभी महस्त्रों में, पटुत्व की इसे सदिच्छा॥
महा मन मर्मज्ञ, शुक्र जी हैं भृगुवशी।
सिखलायेंगे इसे कला, रण रिपु विध्वंसी॥

हम दोना अन्योन्य, मित्र हैं बहुत समय से।
देंगे विद्या इसे शुक्र जी सदय हृदय से॥
वार्तालाप तुष्ट ह्वै, सविनय लई विदाइ।
भामिनि गद् गद क्षुब्ध बाल को निज उर लाई॥

नयन नीर सों धौत, विभूति न रही बदन पै।
मोह मढी लखि मातु, बचन यों आनि रदन पै॥
सविनय बोल्यो मरुत, सुना क्या मुनि हैं कहते।
ज्ञात मुझे वह शीघ्र, अन्य बटु रटते रहते॥

शाघ्र धनुर्धर महा, महा हो मैं आऊँगा।
वाणा हित एकातपनता मैं लाऊँगा॥
बिना साधना सिद्धि कहाँ? लोकोक्ति यही है।
जननि इसी में भुक्ति, मुक्ति सन्निहित रही है॥

विदुषी तुम तो स्वय, धैर्य तब क्यों खोती हो।
सहते हम पवि हृदय किये दुख तुम रोती हो॥
जननि प्रेम-पथ-रहित हमैं अयि! पूज्या माता।
धेनु वत्स सा मोह, ममत्व सदैव सताता॥

'अग्रेविषमिव अन्तेऽमृतमिव' विद्या निधि है।
सर्व प्रथम जीवन म विद्योपार्जन विधि है॥

वंचित होता तव पदाब्ज, सुखद स्पर्शन से।
समय समय पर जननि, तोप देना दर्शन से॥
निद्रा के आगमन, तथा निद्रावसान में।
निज रत्ता हित चिन्तित करते तुम्हें ध्यान में।
बहुत गये अब थोड़े, हैं दिन आऊँगा अब।
तवादेश कर तव पदाब्ज उर लाऊँगा तब॥

कुण्डलिया

विलगायो कर्त्तव्य यों, ज्यों शशि सिन्धु दुराय।
यथा पथिक द्वै पन्थ के, त्यों सुत जननि विहाय॥
त्यों सुत जननि विहाय, भामिनी गई ससुर सँग।
धैर्य रुचिर रंगरेज पलटि पूरब वियोग रँग॥
रजक-आस तिहि धोय, सान्त्वना-सित पुनि लाये।
सुत विलगाये यथा, तथा अब दुख विलगाये॥

उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

बीसवाँ सर्ग

कोशल प्रत्यावर्तन

छन्द रुचिरा

विकच नयन   निरखत मीरा,
    जिमि है अपने नटनागर को।
होत   परीक्षार्थी   प्रसन्न,
    ज्यों पावे वह प्रश्न सुकर को॥
होवें   रसमय काव्य रसिक,
    जिमि जयदेव कलित छन्दन सों।
प्रेयसि   प्रेमी प्रमुदित जिमि,
    होवें पाय निभृत कुंजन सों॥
होवें   आशा पूर्ण वनिक,
    जिमि देखि भाव ज्यों ज्यों बढ़तो।
नाविक होवें प्रमुदित जिमि,
    बाढ़ उदधि को देखत घटतो॥
वैसोई   प्रमुदित   भामिनि,
    कोशलपति अरु जनता सिगरी।
आयो लौटन   दिवस   अबै,
    प्रिय मरुत्त को कोशल नगरी॥
उन्नत   कन्धर बैठो रथ,
    नृपति करन्धम, सत्वर गामी।

उत्साहित चले युवक गन,
बनिठनि लावन अपनो स्वामी ॥
पाग बाधि बाँकी तिरछी,
ले कर मैं वै बाँकी लकुटी।
सखा सँघाती सजि सजि कै,
सब महवीरी धारे त्रिकुटी ॥
'चलो चल, लावें' बोले
अति प्यारा अपना बाल सखा।
थाम करेजा बैठे ये,
सब उत्सव आनँद त्याग रखा ॥
गये नदी कल्लोल नहीं,
नहीं कहीं हम आखेटन को।
भल्लूकन खिच गये नहीं,
नहिं नमाकुन धर घाटन को ॥
नाग पँचैया मल्ल किये,
नहिं गये कूदने हम कूरी।
नहिं धारे हरियरी पाग,
नहिं खाये दाल भरी पूरी ॥
मोछ बनाये बीछी सम,
नहिं रँगी नीम की लै लकरी।
नहि नचीं नाक नथुनियन,
गुडियन पाटि निकासे चिथरी ॥
दुर्गा पूजा किये नहीं,
बलि भैसा बधिया छागन हू।
नहि निकसे हम शस्त्र लिये,
बाँधे सिर पियरे पागन हू ॥

होरी धमार नहिं गाये,
नहीं उलारा चौतालन मे।
हाथ पिचुक्का लिये नहीं,
मीज्यो अबीर नहिं गालन मे॥

चले गये दिन नीरस तो,
अब आये रज्ज गज्ज दिन ये।
लौंवें बाल सखा प्रिय, को,
भागें वियोग के दुर्दिन ये॥

शब्द वेध सब मंत्र वेध,
करता सखा हमारा सुनते।
बड़े बड़े सीखे प्रयोग,
जिनके नाम न कहते बनते॥

वेद शास्त्र के पारंगत,
देखे दर्शन वर्सन उनने।
देखें अब वह सरल सखा,
है वही साथ खेला जिसने॥

चाहे कुशल होयें जितने,
पर झाबर में हम मारेंगे।
गुल्ली फेंकि मारि हम तो,
सदा सदा उनको डाडेंगे॥

चलै तैरने बढ़ी नदी,
आगे हम जाय पछारेंगे।
करने आवै मल्ल कभी,
तो पृथ्वी पीठ लगावैंगे॥

वो दिन खेल खेलौनन के,
दिन भूलो भूल भुलैयन के।"

बोल्यो बाल सयानो इक,
अब लागैगी ड्योढी उनके॥
बात पुरानी भूल जाव,
उनको सब तुम सपना समझो।
हुए वर्ष सोलह के हैं,
सखा न उनको अपना समझो॥

अनुचित बातें कितनी तुमने,
कही सखा बेचारे को।
विद्या देती कोमलता,
सुशीलता पढ़नेवाले को॥
होगा अति प्यारा साथी,
वह परमादर्श सुजनता का।
सहृदय स्नेही उच्चभावयुत,
होगा प्रिय वह जनता का॥

लो, देखो मुनि का आश्रम,
वह धूम्र धूम से है उठता।
सखा हमारे के प्रयाण
में मानो है आहें भरता॥
दिवौकसों को धूम्र व्याज,
से भेज रहा संदेश यही।
महा धनुर्धर वीर धुरन्धर,
सुर स्नेही है मही सही॥
अजी बढ़ो देखो सशिष्य,
मुनि देने को पाद्यार्चन ले।

आतिथेय करने को आगे हम
सब का बढ़ खड़े भले ॥
यों करते वह बढ़े मुदित
हो आतिथेय स्वीकार किया।
आतुर यज्ञालय में राजा,
कर मरुत सुदर्शन सौख्य लिया ॥
देख्यौ मन्त्राहूत शस्त्रवर,
यज्ञ भाग निज लेत रहे।
सविधि मरुत आहुति के द्वारा,
सादर जो थे देत रहे ॥
अस्त्र अरुण सित असित पीत,
नीलाभ दिव्य ये द्युति धारे।
वैश्वानर साकार मनौ,
है मुदित सप्त जिह्वावारे ॥
कह्यो मरुत कर जोरि,
अस्त्रवर धन्य हुआ पाकर तुमको।
विनय यही मैं जभी बुलाऊँ,
आ कृतकृत्य करें हमको ॥
कहा मरुत ने ओम् शं शं फट्,
सब शस्त्रास्त्र अदृश्य हुए।
नाटकान्त जिमि गिरे यवनिका,
पटलावृत सब दृश्य हुए ॥
बाहर आइ महोरग पुनि,
प्रविसत जैसे अवनि विवर मैं।
होत दिवाकर दीप्त निकर कर,
क्षपित जिमि नभ जलधर मैं ॥

जिमि वर्षा के मत्त महानद,
हैं जात लुप्त सागर में।
तिमि दिव्यास्त्र शस्त्र आये,
वै भये तिरोहित अंवर में॥

चकित कण्भम देखि मरुत
का अलौकिक विस्मय शीला।
मन्त्र विदाम्वरता बालक को
दिव्यास्त्रों के प्रति लीला॥

सोचत वहे मरुत के वाही,
जो तजि कौशल इत आयो।
राज सदन में लालित पालित,
कस तप तपि क्षमता लायो॥

जटा जूट सिर मस्म विभूति,
तन दिव्यालोकित आनन है।
मुंज मेखला चर्म पीत,
उपवीत पूत परिधानन है॥

मरुत आर्य आचार्य पुरस्कृत,
आयो जित बाबा वाको।
कहि न जात कित भयो हरखि,
हिय देखि पितामह निज जाको॥

पितामहाम्बुज चरण शिरसा,
नमामि बारबारम्।
अवीक्षितानन्दः मरुतोऽहं,
पार शस्त्रोदारम्॥

राजा करि आलिंगन ताको,
कह्यो धन्य गुरु तेरे हैं।

शार आवर्तन सवर्तन,
में कुशली विज्ञ घनेरे हैं ॥
भली घडी आये देखा,
जो विद्या पाई है तुमने।
पूछा पूज्य गुरु से सविनय,
गुरु दक्षिणा भी तुमने ॥
गुरु पकज पद पै शिर धरि
निज कह्यो मरुत अति अनुनय से।
पूज्यपाद दक्षिणा ममोचित,
कहिये अब सदय हृदय से ॥
बोले, वृश्चिक चक्री जब,
हो क्रुद्ध राहु का सहयोगी।
घेरे दीन , सुधाकर को,
ज्यों अति सरोष भीषण भोगी ॥
लूक केतु जब गिरें दिवस मे,
धीर न रहे धीर जन का।
जन्म तदा हो मुनि घातक,
भल्लक भूधर नाम असुर का ॥
बाधा ऐसी आये तब,
तुम करो प्रतिज्ञा रक्षा की।
यही दक्षिणा इष्ट हमें,
आवश्यकता न विविद्या की ॥
सुनत मरुत मुद कह्यो जोरि कर,
निश्चय गुरुवर आऊँगा।
तवादेश से शीघ्र - असुर
को यमपुर में पहुँचाऊँगा ॥

सफल तभी तो शर शिक्षा,
हौंगे तोषित दिव्यास्त्र सभी।
ऋषि मुनि यजन ध्वंस फल को,
पावैगा दुष्ट नृशंस तभी॥
विदा दई आसिस दै गुरु,
सुनि शिष्य प्रतिज्ञा ओज भरी।
मुदित भये संवल फल दीन्हें,
पिटिका पात्र सरोज भरी॥
गुरु अभिवादन कर सवादन,
सहपाठिन सों प्रेम भरी।
चाल सखन सों आय मिल्यो,
पुनि मुदित नेह के नेम भरी॥

कुण्डलिया

हर्षित भये अमर्त्य जिमि, पाय षडानन बीर।
कृष्ण पाय पाडव भये, आनन्दित रणधीर॥
आनन्दित रणधीर, पाय सुर यथा सुधा घट।
कृष्ण सम्यतक पाय, जीति जमवन्त महाभट॥
तिमि कोशल नृप राज, पौत्र प्रिय प्रेमाकर्षित।
पाय मरुत को भये, स्वजन पुर जन सब हर्षित॥

बीसवाँ सर्ग समाप्त

इक्कीसवाँ सर्ग

मरुत का राजतिलक

छन्द बरवै

धुधुधू धुधुधू करती, तूर्यल जोर।
कड़क कड़क धम डंका, सुनियत शोर॥
करत घोषणा चहुँदिसि, राजा दूत।
घर घर करो तयारी, परम अकूत॥
मार्जन करो भूमि को, धवलित धाम।
चित्रित करो भित्तियन, अति अभिराम॥
ध्वजा पताका बहुरँग, रुचि अनुहार।
सजौ सबै निज निज गृह, सुठि सृगार॥
शुक्ला आश्विन दशमी, राखौ ध्यान।
लहैं अविक्षित सुमुकुट, राज्य महान॥
चलौ कलावंत नर्तक, वादक भाट।
सुषमानायक* करिहैं, सुसमय बांट॥
दूध दही को करियो, सब भरमार।
राज सदन मे होवै, तुव ज्योनार॥
सुनत तुरुही डंका, घोषण कार।
निकसे सब नर नारी, तजि घरबार॥

* संगीत-वाद्यादि का प्रबन्धक

लये गोद मजुल अति, सुन्दर बाल।
चकित मृगी सम अनकत, नयन विसाल॥
झाँकति है गृह ललना, पकरे पौरि।
जुगुल जलद बिच मानो, विधुकर भौरि॥
तजत रसोई सुनतै, डकाचोट।
दौरि परे सब बालक, लै निज गोट॥
भयो हाट चौहट मै, जन सन्दोह।
नृप-घोषण सुनिवे को, ऊहा पोह॥
सिरकी पाये लोचन, सब है चार।
शोत्र हीन वातायन, कर्ण सुढार॥
चहल पहल भइ यों ज्यों, पकरन चोर।
भयो पुनः तूर्यल अरु, डका सोर॥
राजतिलक दशमी को, हो बुधवार।
राजा होयँ अविछित, धीर कुमार॥
रह्यो खेलतो चौसर, भामिनि साथ।
पर्यो रह्यो पौ वा को, बारह हाथ॥
सुनत फेकि पासा को, दौरि कुमार।
तुरतहि गयो पिता के, वेश्मनि द्वार॥
व्यथित हरिण जनु लागे, तें शरवार।
विकल वनिक जिमि दौरै, हत व्यापार॥
व्यग्र व्यथित पहुँचे तहँ राजकुमार।
बैठे जहँ कोशलपति, करत विचार॥

छन्द कुकुम

करि प्रनाम बोले चितचिन्तित,
राजतिलक यह है कैसा।

सहसा क्यों विचार यह कैसा,
राजतिलक यह है कैसा ॥
चरण शरण सेवा विहीन कर,
राजतिलक है यह कैसा।
कौतुक क्रीड़ा योग कुँअर को,
राजतिलक है यह कैसा ॥
कुँअर विकलता लखि कोशल पति,
कह्यो कुँअर से मुसकाई।
जीवन दिवस बहुत कुछ बीता,
अब संध्या वेला आई ॥
राज भार अब वहन करो तुम,
मर्यादा कुल की रख कर।
पुरजन परिजन, तथा प्रजाजन,
अभिलाषा सब की रखकर ॥
यह पैतृक अधिकार तुमारा,
नहीं वत्स इससे पूछा।
राज त्याग अधिकार हमारा,
नहीं वत्स इससे पूछा ॥
पालनीय प्रत्येक व्यक्ति को,
सदा मनुस्मृति की आज्ञा।
तदवज्ञाकारक नर होता,
लोक विनिन्दित हत प्रज्ञा ॥
शूर महत्तम, जनक समुत्तम,
तुम नृपता स्वीकार करो।
अध्यात्म देश को हम जीतें,
तुम भूमंडल विजय करो ॥

गृहस्थः तु यदा पश्येत्, वली पलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्य तदारण्यं समाश्रयेत् ॥

वाणप्रस्थ वन, बन निवास
करने की इच्छा है मेरी।
मनु अनुमोदित सुनो सही तब,
इसमें हो अब क्यों देरी ॥

आसा महर्षिचर्याणा त्यक्त्वान्यत मया तनुम्।
वीतशोकभयोविप्र ब्रह्म लोके महीयते ॥
यो दत्वा सर्वभूतेभ्य प्रव्रजत्य भय गृहान्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥

कह्यो कुँअर देखी हैं स्मृतियाँ,
यही तदाशा अन्य नहीं।
ऋषि पूजित जनकादि सदा
राजर्षि हुए बन गये नहीं ॥
राज भोग इस हाथ लिये,
अध्यात्म योग उस हाथ लिये।
कर्माकर्म विपाक त्याग का,
मध्यम पथ स्वीकार किये ॥
कर्मयोग सर्वोत्तम यह भी,
आत्मज्ञान प्रदायक है।
यह उपदिष्ट इष्ट उसका है,
जो सब विश्व विधायक है ॥
गीता की सारी गीता में,
योगेश्वर का कथन यही।
वीर पार्थ ने सार्थ किया बस,
समरांगण में यही सही ॥

"सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥
अनाश्रित' कर्मफल कार्य कर्म करोति य. ।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय. ॥

बोल्यो भूप परम पडित हो,
किन्तु तुम्ह यह स्पष्ट नहीं ।
श्रद्धामय यह पुरुष वस्तुतः,
श्रद्धा रहित न पुरुष कहीं ॥

श्रद्धा रहित मार्ग कोई हो,
कार्य सिद्धि है कब होती ।
कर्मयोग की कुडलिनी ज्यों,
रहती काया में सोती ॥

श्रद्धा ही वह मनोयोग है,
जिसके बिना न कुछ होता ।
होता काज निरर्थक जैसे,
पाकर खेत बिना जोता ॥

राज काज से अब विरक्ति,
अनुरक्ति हुई बन जाने में ।
इच्छा है अब भव-भोगी से,
वन-योगी बन जाने में ॥

राज काज घर में अपने लो,
मैं ले लू अब वनचर्या ।
कृष्ण कथित है यही तुम्हारी,
वह मेरी जीवनचर्य्या ।

विहाय कामान् य. सर्वान् पुमाश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहकार स शान्तिमधिगच्छति ॥

सिद्ध करना का या जाने की,
यदि उत्कट इच्छा होगी।
शास्त्र वर्णित अधिकार आज को,
सम्मति नहीं तब देगी॥

परम्परा सम्मत भी यह है,
है जिसका प्रचलन यहाँ।
जनइच्छा का पालन करना,
कहा गया शुभतम सदा॥

स्वाभिमान

विनित व्यक्ति में स्वाभिमान की,
होती मात्रा कम ऐसी।
जीवन के इस रणक्षेत्र में,
होती जय ऐसी वैसी॥

स्वाभिमान है बलविक्रम जो,
सब वैभव सबका दाता।
स्वाभिमान से श्रम किया हो,
विजय भा धी सब पाता॥

स्वाभिमान-हत जग जनता भी,
दुख दरिद्रता है सहती।
ऐसे तैसे जीवन यापन,
करती मृतवत ही रहती॥

विपत समय में स्वाभिमान तो,
होता है सुहृद सहायक।
समय सुभाषा में सुख देता,
होता शुभ सम्मति दायक॥

उच्च लक्ष्य होता अलक्ष्य यदि,
स्वाभिमान मन व्याप्त नहीं।
स्वाभिमान के बिना समुन्नति,
मृगतृष्णा सी प्राप्त नहीं॥
चिन्ता मणि सा स्वाभिमान,
है कल्पतरु वांछा दाता।
जो न सबल है इस के बल से,
उसका कहाँ कौन त्राता॥
शक्तिमान थे बुद्धिमान थे,
हनूमान वानर सत्तम।
रक्खे हाथ हाथ पर बैठे,
सब अम्बुधितीर महत्तम॥
श्लाघित हो वानर दल से,
स्वाभिमान जब उनमें आया।
गोपद जल सा जलधि लिया कर,
सीता मार्गण यश पाया॥
है नर मानधातेव शचीपति,
इव इससे ही पय पाता।
अद्वितीय कमनीय कीर्त्ति श्री,
गगनोदधि से ले आता॥
होता वही राज्य का गौरव,
रौरव को स्वर्ग बनाता।
दर्शनीय आदर्श ध्रुवोपम,
पथ दर्शक वह कहलाता॥
स्वाभिमान जो आत्म सुगौरव,
वह मुझ से अब चला गया।

सिंहासन के योग्य कहाँ मैं,
जब निर्बल सा दला गया ॥
कहो पिता यों तुम न चिन्तित हो,
कूट नीति से तुम हारे।
थे तुम धन्यो एक समर में,
पामर रिपु कितने मारे ॥
बस न करो व्यवधान व्यर्थ ही,
कोशल के तुम अधिकारी।
करो प्रजा पालन तुम, हमको
होने दो अब वनचारी ॥
कहो कुअर, हे देव विनय यह
स्वीकृत अब करो हमारी।
तिलक आप कीजिये पौत्र का,
होगी सब प्रजा सुखारी ॥
दम्भ हीन निश्छल समति है,
इसमें अति कोशल हित है।
सत्व त्याग का देता है,
अधिकार शास्त्र सब को नित है ॥
वत्स दुराग्रह दूषित हो तुम,
व्याह विषय में देखा है।
राज सौंप, वन जाने में क्या,
मीन मेष का लेखा है ॥
कोशल का सिंहासन पाने मे
ईर्षा सब नृप करते।
मिथ्या भाव प्रभावित होकर,
राजश्री न समादरते ॥

पिता पितामह धाम धराधन,
पैतृक धन है कहलाता।
जन्मजात पुत्राधिकार इस,
में प्रतिबन्ध नहीं आता॥

देव दयामय, कुछ मत कहिये,
लज्जा होती हमें बडी।
रक्षा कर न सका निज भोगी
कारा की यातना कडी॥

रक्षण कौशल सत्त्व कहाँ से,
सत्त्वहीन यह जन लाये।
क्षमा करें इस दीन हीन को,
गत-स्मरण दुख उपजाये॥

छन्द अरिल्ल

तब गयो दूत विद्या निकेत।
जहँ रह्यो मरुत नित पढन हेत॥
वह कह्यो चलो चट राज सदन।
महराज बुलायो मन्त्र करन॥
सर्वेष्टि पुस्तकनि जाय मरुत।
चलि दियो तुरग चढि सत्वर उत॥
वह गयो बेलबन, नाग भवन।
अब यज्ञ निकेतन, रतन सदन॥
अभिषेक कुंड इत छूटि गयो।
अब चित्रायन तित छूटि गयो॥
अति व्यग्र सुचिन्तित तर्क धरत।
कछु हेतु न याको जानि परत॥

प्रात समय तो रहे स्वस्थ सत्र।
नहि रिपु बाधा कोऊ संभव॥
पढ़ने में पातंजलि के रत।
बबा बुलायो है मोको कत॥
अब पहुँचि गये मंत्रणा भवन।
तजि तुरग द्वार उत कीन गमन॥
सिर नाय आय दोउ चरन परसि।
आयसु बाबा क्या कहैं हरसि॥

हुकुम

राज तिलक दशमी को स्थिर था,
होगा तुमको ज्ञात सभी।
त्याग दिया तव पितु ने तृणवत,
अपना पैतृक सत्व सभी॥
इनका दृढ संकल्प यही है,
व्यर्थ इन्हें है समझाना।
बात हमारी तुम अब रक्खो,
मैं चाहूँ अब बन जाना॥
निश्चित तिथि पर राजतिलक हो,
राज्य भार स्वीकार करो।
बना तुम्हे नृप, हम बन जायें,
यह तुम अंगीकार करो॥
यथा पितामह की आज्ञा हो,
शिरोधार्य है तथा मुझे।
हाँ, कहना केवल इतना कि न,
आती शासन प्रथा मुझे॥

होता हूँ अधीर मन इससे,
किन्तु धैर्य होता इससे।
प्राप्त पिता पद का प्रताप है,
सुगम अगम सब कुछ जिससे॥
यथा भानुभा के रहने पर,
भव करता है कार्य सभी।
चाहूँ मैं पितु रहैं प्रदर्शक,
रहै न कुछ अमनस्क कमी॥
तव प्रताप प्रति मूर्त पिता के,
पद पद्मों का पा दर्शन।
मन में प्रतिभा, तन में बलभा,
देवेगा उनका स्पर्शन॥
रहै सदा कौशल चित चिन्ता,
से चरार्चित चित्त हमारा।
प्रजा, राजहित सेवा तत्पर,
सुख अपना करतब न्यारा॥
पिता पितामह अति प्रसन्न सुन,
बालक वचन बिरद ऐसे।
लाय हृदय में शुभाशीष दे,
क्रतु कृत हो शतक्रतु जैसे॥

⁂

विकट परिस्थिति की स्थिति ऐसी,
बस एतोई कहि आवे।
समुद अमुद मन कुमुद जलजहिय,
सुत प्रभात है जिमि भावे॥

ज्यों सप्त द्वीप सम्पत्ति विधायक,
सिंधु सैंधव युत होवै।
ज्यों व्याधि विनाशक भेषज सब,
सदा नहीं मधुमय होवै॥
ज्यों औषधीश औषधि को पोषक,
हरिण लाञ्छन युत होवै।
ज्यों अस्त्र शस्त्र जो राज्य सुरक्षक,
तबहूँ यह हिंसक होवै॥
त्यों नित पथ कर्तव्य कर्म को,
सदा विरोधमय अति होवै।
राज धर्म है इहै, हँसै चख
एक तथा दूजो रोवै॥
क्वार मास की विजया दशमी,
ललित दुर्ललित साथ भई।
राजतिलक वन गमन हेतु लै,
सबही सुख युत दुःख भई॥
नहिं युवराज लियो राजपद,
यह सुनि बहुजन अनखाये।
बालक सुनि सम्वाद मुदित भे,
साथी निज नृप पद पाये॥
धाम धाम में धूम धाम अति,
जनता सब तहँ जुरि आई।
लै उपहार भूप अनुहारहु,
पुरजन परिजन समुदाई॥
राजतिलक तब कियो करन्धम,
पौत्र सिंहासन बैठायो।

वैदिक विधि सों भई तिलक विधि,
विविध समुत्सव सुख ठायो ॥
वानप्रस्थ विचार नृपति को,
त्याग अविचित्त को ऐसो ।
कुसुमाकर में नीरोपल को,
कछु प्रपात होवै जैसो ॥
भयो रंग में भंग, मक्षिका
पात यथा पय में होवै ।
आशा शुभ को दुर्घटना जिमि,
लवण पाय पय रस खोवै ॥
ऐंठ पैंठ समधी की जा विधि,
ब्याह उछाह करै फीको ।
पारस्परिक प्रजाविग्रह ज्यों,
हरन करत देश श्री को ॥
द्वैधी वृत्ति प्रवृत्ति प्रजा मे,
इह अवसर जो सुखदाई ।
ताके कारन तिलकोत्सव की,
मलिन भई कुछ विमलाई ॥

दोहा

कोशल को राजा भयो, भरत महा मतिमान ।
कियो करन्धम विपिन को, वीरा संग पयान ॥

एक्कीसवाँ सर्ग समाप्त

बाईसवाँ सर्ग

महामुनि संवर्त।

रोला

मरुत सुन्यो उपथान, उपरमित मृदु वीना सुर।
आँगन आयो दौरि, लखन को नभ ज्यों आतुर॥
अहो किमपि सुषमा जाको, लखि नृप निज नयनन।
सोचत ज्यों स्फटिकाद्रि, अवनि आवत धरि नर तन॥
अचपल चपला सरिस, हिये उपवीत विराजत।
पीत वसन तन शुभ्र, करन में वीणा राजत॥
तन्त्री सों हरिनाम, अभक्तन भक्तन भावत।
क्षीरधि सोवत हरिहि, हठात जगाइ लुभावत॥
हरिपदान्त रस धारि, यथा शुचिता स्वरूप है।
भक्ति विशारद नारद, पद प्रेमानुरूप है॥
पारिजात परिमल ज्यों करतो है विकसित मन।
भरत भक्ति को भाव, सुभावहि नारद दर्शन॥
गन्ध नशावत जिमि है, दुष्ट वास पावस को।
नासत इनको दरसन, त्यों चिन्ता मानस को॥
नारद येते हि माँय, उतरि अवनी पै आये।
मरुत मुदित मन दौरि, भाव भरि सीस नवाये॥
धन्य! धन्य! अनुकम्पा, कैसी भक्त राज की।
हरति सबै दुख दुरित, मूर्ति, मञ्जुता आज की॥
भूरि भाग्य मम आज, कृपा जो किया आपने।
करि अभिनन्दन करी बन्दना रुचि रस विनने॥

कहो नृपति चिन्तित कैसे सकुशल तो सब है।
नृप बोल्यो क्या कहूँ, आप को अवगत जब है॥
त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ आप क्यों चिन्तित हम हैं।
पूँछ रहे क्यों आप, जानने में जब क्षम हैं॥
सुनि मुनि व्यथित निज प्रशस्ति बोले हिय हर्षित।
तपोत्कर्ष से त्रस्त, शक्र आतकाकर्षित॥
चिन्तित हैं छिन जाय, न यह अधिकार हमारा।
सुना जभी से यज्ञ, हेतु संकल्प तुम्हारा॥
रोका सुर गुरु को शक्र, आप आचार्य न होवें।
इन्द्रासन आसीन, कदापि अनार्य न होवें॥
इसी समस्या मे, नृप बोल्यो, मन उलझा है।
सोचा बहुत न किन्तु, कार्य अब तक सुलझा है॥
महाध्वर होगा कैसे, यदि नहीं पुरोधा।
रण जय पाता बिना, न सेनानी के योधा॥
देव, बृहस्पतिवश, प्रशस्त पुरोहित मेरे।
इन्द्र प्रभावित होकर, मुझसे हैं मुख फेरे॥
मेरा कुछ अपराध, नहीं है इसमें मुनिवर।
कहें आप ही पूर्ण, आश हो कैसे ऋषिवर॥
सुर गुरु ने व्यवहार, किया प्राकृत जन जैसा।
किन्तु व्यतिक्रम सत्कर्मों में होता ऐसा॥
सुर गुरु हों आचार्य, कहे, अनिवार्य नहीं है।
त्रिभुवन मे बस एक यही आचार्य नहीं है॥
तन्त्र-मन्त्रवित, महा, यन्त्रवित गुप्त रूप है।
प्रकट नहीं अप्रकट, सृष्टि कर्ता अनूप है॥
बात काटि, नृप, कह्यो, कहाँ उनको हम पावें।
जावें उनके निकट, विनय कर उनको लावें॥

नारद बोल्यो वे अवधूत बने मतवारे।
रहते अवधूतेश धाम में अति मलिनारे॥
कह्यो मवत उनको हम, तब पावेंगे कैसे।
पहचानेंगे किस प्रकार मानेंगे कैसे॥
सुर मुनि बोल्यो विहँसि, देव गुरु के वह भाई।
धन्य नाम सवर्त, सिद्धि तप कर सब पाई॥
सुर गुरु ने सान्याय मार्ग रोके उनके हित।
किसी लोक में कहीं, न होने दिया पुरोहित॥
हो वितृष्ण वे ब्रह्म लीन करके अपना मन।
हुए पूत अवधूत, प्राप्त वह अमतिहत-तन॥
विश्वनाथ के द्वार, पहुँच बैठो तुम जाकर।
हो जिसको अति घृणा, वहाँ जब तुमको पाकर॥
बस उनको जानना, सिद्ध सवर्त यही है।
करना उन्हें प्रसन्न, भूपवर खेल नहीं है॥

सोरठा

सुन कर यह उपदेश, अति प्रसन्न हो नृपतिवर।
कहा कि हे देवेश, हूँ कृतज्ञ मैं आपका॥

काशीपुरी। पद्धरी

तब गये बनारस तुरत भूप।
तजि कै सब कोशल सुख अनूप॥
पहुँचे काशी जहँ विश्वनाथ।
लखि मुक्ति पुरी ह्वैगे सनाथ॥
अति रहे दीन अरु मन मलीन।
सुषमा मद की लखि शोक छीन॥

आभा वहँ की अद्भुत जनात।
जस और नगर में नहिं विभात॥
जहँ राति रहत होवै विहान।
जावैं नर नारी, करन न्हान॥
शकर शिव, शिव श्री विश्वनाथ।
रसना रटि रटि होवै सनाथ॥
थल थल जहँ पै शिव मूर्त्तिमान।
गगाजल पावन करत पान॥
है कौन कौन मैं बिल्व राति।
जहँ फिरत साँड ता कहँ विनासि॥
अति मस्त चलत जनु पहलवान।
उन सन जनु है नहिं कोउ आन॥
माला जो दर्शक गर दिखाय।
तेहि पान सरिस बरबस चबाय॥
टूटत सबजी पै मनहु बाज।
डडा पावत नहिं तनिक लाज॥
निर्द्वन्द्व फिरैं वै सएड मुएड।
वै चलत धन्य नहिं बाँधि फुंड॥

जो न्हान जात नागरिक भीर।
सेवत सुभक्ति सिञ्चित समीर॥
अति भव्य लगै भस्मी लगाय।
बाबा पूजत उर भक्ति लाय॥
बोलत शकर शिव महादेव।
प्रतिध्वनि करती है एव एव॥

घण्टी घण्टा जहँ घनघनाय।
पावन धुनि निसि दिन तहँ सुनाय॥
यह पुरी और सों और और।
है वेष बसन कछु और तौर॥
है सेत पान चौघडन पूर।
जन जा चामन मैं वृषभ सूर॥
है होड़ करत गालन फुलाय।
जनु नसतरंग बाजत बुझाय॥
यह गली साँकरी भवन ऊँच।
है कियो गलिन तें धाम कूँच॥
नहिं आतपत्र को कछुक काम।
जहँ आतप मैं नहिं ताप घाम॥
प्रति घाट घाट को ठाट बाट।
पडा बैठे मडित ललाट॥
उत बहत जाह्नवी धार धीर।
जनु पाप बहन तें मन्द नीर॥
डोंगिन सैलानी जात पार।
वै बाँधि गोट द्वै तीन चार॥
घुट रही भंग अरु लगत पान।
छिड़ रही कहूँ कोउ सरस तान॥
उद्विग्न होत जे करत ध्यान।
बैठे सन्ध्या हित करि नहान॥
अस्फुट कलरव तट पै सुनात।
कल्लोल करत बालक अन्हात॥
है घाट बाट बर तटनि तीर।
कासी सुषमा को कहै बीर॥

काशी वासिन की ठसक और।
कछु बोल चाल की लटक और॥
अति स्वच्छ अच्छ झीने पटान।
सब गौर मजु मुख भरे पान॥
इनकी कछु औरहि आन बान।
कछु चाल ढाल कछु और सान॥
धनि विश्वनाथ तव धाम धन्य।
विद्यानिकेत ऐसो न अन्य॥
सस्कृत पाठन की आदि पीठ।
सब की शास्त्रन पै सदा डीठ॥
विद्वान बड़े दिग्गज दिखायँ।
सब पच्छ व्यवस्था देत जायँ॥
सगीत सार बहु बीन - कार।
बहु ताल सुरन के जानकार॥
है राग-रंग की पीठ सिद्ध।
विस्तार भैरवी की प्रसिद्ध॥
होते जौ नहिं दंडी अकाम।
को नारायण को लेत नाम॥
यह तो शूली को है जहान।
इत हर ही को सम्मान मान॥
जो सेवत या धुर्जटी धाम।
ते आशुतोष लौं है अकाम॥
भव भुक्ति भोग होवें विमुक्त।
भव सों मुनि तारक मत्र उक्त॥

रोला

शाश्वमेधहि जाय, न्हाय नृप दुखित दीन मन।
विश्वनाथ पद नीर, धारि पावन कीन्ह्यो तन॥

शिव प्रसन्नता भूप, मुझे होगी सब अवगत।
आऊँगा इष्टार्थ, हेतु मैं वैनतेयवत॥
मुदित मरुत पद पकरि, कह्यो, पर सुन लें गुरुवर।
सुर गुरु सुरपति, इस पर, क्रोधित होंगे मुझ पर॥
वासव यदि सम्मिलित न होंगे आकर इसमें।
सफल यज्ञ वह कहाँ, भाग लें शक्र न जिसमें॥
अग्रज मम ईर्षालु, शचीशोत्तेजित होकर।
विघ्न करेंगे सद् विचार अपने सब खोकर॥
बोल्यो मुनि संवर्त, व्यर्थ चिन्ता यह सारी।
मन्त्र-शक्ति सी शक्ति न लोकत्रय में भारी॥
यथादेश मत टालो, होंगे सफल मनोरथ।
फूल फबीला फूलेगा तब शूल भरा पथ॥

दोहा

निज निज पथ दोऊ गये, तुष्ट दोऊ से दोउ।
कहा भयो कैसे भयो, मरम न जान्यो कोउ॥

बाईसवाँ सर्ग समाप्त

तेईसवाँ सर्ग

धर्म-सकट समर

सरसी छन्द

बड़े बड़ेन सो बड़े अहो,
नाना बृद्ध महान।
सब पुरान हूँ सो पुरान तुम,
ते नहिं और पुरान ॥
बूढ़े बाबा तुम तौ देख्यौ,
भारत अभ्युत्थान।
आरत गारत ताहि लख्यो पुनि,
महिमा महिमावान ॥
लखि इन व्यथा, व्यथित है धारौ,
निज सिर हिम उष्णीस।
याही तें राजत जगती मैं
राजत तुम हिमईस ॥
धन्य ! धन्य ! तुम हे हिमि आकर,
धन्य तुमारो भाग।
धन्य ! धन्य ! ता सुता जनक हौं,
शिव मैं जेहि अनुराग ॥
धन्य ! धन्य ! भूपतित गग को,
तुम कान्या सन्मान।
धन्य ! धन्य ! नर नारायण के,
आश्रय अचल महान ॥

पुण्य नदिन को हो तुम धाता,
रत्नन के आगार।
तप करिबे की पावन थल हौ,
शान्तानन्दाकार ॥

भूतनाथ के भ्रमण-स्थल हौ,
हिमगिरि जग विख्यात।
तप तवाक में कियो मरुत नृप,
मान महामुनि बात ॥

आशुतोष को तोषित कै नृप,
कनक राशि बहु पाय।
यज्ञ स्तम्भ, पात्र, शाला सब,
कनकहि के बिरचाय ॥

इतो दियो नृप हेम द्विजन को,
ढोइ न पाये पार।
तऊ बचि रह्यो ऊँट बैल बहु,
लादि लादिगे भार ॥

मन्त्र मुग्ध सुर सहित सुरेश्वर,
कियो सोम रस पान।
रुष्ट रह्यो सतुष्ट भयो सोइ,
कियो बहुत गुनगान ॥

अद्वितीय अस कियो न करिहै,
कोऊ यज्ञ महान।
परिमल लौं दिसि दिसि मैं व्यापो,
नृप को सुजस महान ॥

दिवि मैं तुष्ट कियो इमि देवन,
मति यों करि मतिमान।

निशितम सम वैरिन को नास्यो,
नृप मार्तण्ड महान ॥
राज कियो एकातपत्र नृप,
वरुणालय पर्यन्त ।
छिति छत्रक छत्रिय सब कीने
निजाधीन सामन्त ॥

❦

कह पुराण इक दिवस सभा में,
हुते महा महिमान ।
सिंहासन पै सुरपति जैसे,
बैठे मरुत महान ॥
जयति महीप मुकुट, प्रतिहारी
कह्यो जयति महराज ।
अर्बुद मुनि आश्रम से आये,
ऋषि कुमार कछु काज ॥
'किमाज्ञापयति' देव, उपस्थित,
आवै ऋषी कुमार ।
हाँ, सादर लाओ, नृप बोले,
यथा सभा व्यवहार ॥
शुभ्र वसन भस्मी चरचिततन,
वैभव सत्व ललाट ।
शीश जटा जासों रचित है,
मस्तक शोभा वाट ॥
ऋषि कुमार आये नृप को दै,
कन्द मूल उपहार ।

बोले, विजयो भव ! कुशली भव,
संस्कृति के आधार ॥
पितामही वीरा प्रेषित हम,
लाये यह सदेश ।
डॅसा सर्प ने ऋषि सुवर्नों को,
त्राहि त्राहि धर्मेश ॥
किया कूप सर सिलिल विषम
विष से उसने सविकार ।
शक्ति भस्म करने की मुनि में,
किन्तु नहीं अधिकार ॥

राजधर्म

देना दड कार्य नृप का है,
यह नृप नीति विचार ।
इसको बरते बिना प्रजागन,
सहते अत्याचार ॥
क्या विलास मे पडकर तुमको,
भूला भूपाचार ।
विदित नहीं अब तक भूपति को,
आश्रम अत्याचार ॥
सेव्य प्रजा है तथा नृपति को,
जिस प्रकार भगवान ।
सन्ध्या पूजा, ध्यान धारणा,
सतत प्रजा का ध्यान ॥
राज मुकुट कटक निर्मित है,
दर्शक हित छविमान ।

प्रजा सुखार्थ नृपति का उसमें,
रहता है बलिदान ॥
देशों के जय करने से क्या?
इन्द्रिय जय से हीन।
श्रारियों से आहत होगा वह,
जो कार्मादिक लीन ॥

पतन पांडु महराज हुआ है,
कामातुर्य विलीन।
प्राप्त मृत्यु को हुआ क्रोधवश,
अनुह्लाद सुत दीन ॥

पुरुरवा सम्राट मरा वह,
होकर लोभाधीन।
प्राण तजे मदमत्त वेणु ने,
हो सब शक्ति विहीन ॥

कुगति अनायुष, वालि सुवन की,
हुई गर्व वशापीन।
मरे पुरंजय महा हर्ष से,
आनद में लवलीन ॥

काम क्रोध मद मोह हर्ष है,
वैरी ये सब भूप।
इन्द्र सूर्य यम इन्दु वायु, है,
नरपति रूप अनूप ॥

अच वक्र से प्रजा तुष्ट कर,
वासव-नीर समान।
रवि सम कर्षण करै, प्रजा से,
कर राजा मति मान ॥

यम समान सुख दुख का दाता,
प्रजा कर्म पर ध्यान।
प्रियकर कार्य प्रजा हित करता,
विधु समान प्रिय-मान ॥

पवन-गुप्तचर सम प्रवेश कर,
प्रजा वृत्ति का ज्ञान।
रखना आवश्यक भूपति को,
है यदि वह मतिमान ॥

प्रजा पुन्य में भाग नृपति का,
स्मृति कहती निरधारि।
पाप भाग भी उसको मिलता,
कर्माकर्म विचारि ॥

पाप प्रवृत्ति प्रजा का वारण,
करना है कर्तव्य।
प्रजा भूप दोनों सुख पाते,
हर कर जो हर्तव्य ॥

साम दाम विधि दड भेद हैं,
राज नीति के अग।
कार्य शिथिल चर नृपति तुम्हारे,
इससे आप अपग ॥

आश्रम में हैं पड़े चार बड़,
अहि विप्र विषम विलीन,
दडदान कर्तव्य तुम्हारा,
रक्षा करो प्रवीन ॥

पितामही आदेश सुना कर,
करते हम प्रस्थान।

साथ हमारे चलें आप नृप,
तो हो उचित विधान ॥

बरवै

धनुष महा लै तर्कस, को धरि पीठ।
वन्दि हरहिं यों बनयो, हरो अनीठ ॥
मनमनात हय युत रथ, जिमि अहिराज,
चल्यो नृपहि लै वह जिमि, झपटत बाज ॥
ऋषि कुमार रथ गति लखि, विकल विशेष,
जटा-जूट बिखरे उन, मानहु शेष ॥
उत्तरीय फहरत जिमि, उड़ै निकेत,
अशुभ सूचना है जनु, नागन देत ॥
हय-खुर-रज पथ छई कि, नाहि दिखात,
रथ लागत रज-गज जिमि, भाग्यो जात ॥
आखेटत चीता जनु, धूलि उड़ाय,
कछुक अदेरहि जाते, नाहि दिखाय ॥
नगर गयो, पत्तन वह, छूटो जात।
गये गाव बन अटवी, शैल प्रपात ॥
आयो आश्रम अर्बुद, धूम दिखात।
टँगे चैल मुनियन के, तहँ लखात ॥
थंभ तुरग भे आये, आश्रम द्वार।
मरुत उतरि तहँ आये, गरधनु डार ॥
कै प्रनाम दादी को, करि कर जोर।
लजित अमानित भे अस, जनु रण छोर ॥

सरसी

दलित किया है मैंने तेरा,
लालन पालन प्यार।

दलित किया है जननि जनक का,
पावन प्रेम उदार ॥
दलित किया है यशी नाम निज,
प्रयत प्रजा त्रातार ॥

दलित किया है गोद मोद वह,
मैंने धर्माचार ॥
भेज मुझे संदेश चुनौती,
दी यदि तुमने आज ।

तब तुम जग के साथ देख लो,
मम धनु कौशल आज ।
मत्त रहा वह बाहु उठा कर,
भुजग वंश उद्दंड ।

पायेगा कोदंड . चंड शर,
से करनी का दंड ।
संवर्तास्त्र शस्त्र की महिमा,
देखे रिपि दिविराट ।
भुजग-राज के आज राज में,
कर दूँगा विभ्राट ॥

घनाक्षरी कृपाण

घाल्यो नृप बान कोर, चमक्यो अँगार घोर,
दावानल ज्यों झकोर, धारि कै अमोघ जोर ।
घेरयो चहुँ नाग खोर, धरैं जिमि जाहि चोर,
रजनी लौं भयो भोर, नारी भजि चहूँ ओर ।
हाय तात लाल मोर, हाय जात प्राण मोर,
त्राहि त्राहि त्राहि रोर, भयो अति आर्त सोर ।

राखो शेष शायी दौर, आवो दौरि वाही ओर,
ढीला निज दया डोर, दीजै बल बद्धि तोर ॥
महा अस्त्र है महान, मानौ बह्नि को वितान,
छार कियो पन्नगान, कारन न कोऊ जान ।
आलय मे अग्निवान, गिरे टूटि के अटान ।
याके करि के विधान, ताप को असह्य जान ।
भागि कूदे वै हृदान, ताहू मैं उठ्यो उफान
पैठे बिल मैं निदान, ज्वाला तहूँ हूँ पिछान ।
राह कहूँ न दिखान, टूटे सबै अवसान,
काल अग्नि के समान, लागे प्रानहू परान ॥

❀

जलहरण

धामिनि चितायड औ, नागिन कराइत औ,
पँडोलन असढ़िया, अजगर गोहूँअन ।
चपटी औ डोडहन, चितरी पेटारन औ
दुमुही सुगौआ आन, विष हू लागे वमन ।
अग्नि केरि लहकन, महा सर्प मनकन,
भाजिबे की सनसन, मानौ प्रलय नर्तन ।
लाग्यो सुनाग नाशन, सवर्त को शरासन,
नागपुर नागन की, कीन्हो निरबासन ॥

रूप घनाक्षरी

वीभत्सरस

उरग समस्त जरि मरन लागे त्रस्त,
मज्जा रक्त मास की नदी गयी बिजबिजाय ।

नरक नदी पताल द्वार मैं परी है आय
दखति है दृश्य देखि देखि त्यों रही सकाय ॥
चील्ह गीध काग चींटी आदि की जमात जुरी
नोचि नोचि खींचि खींचि खाय कै रहे अघाय ।
फैली हे चिराइँध हू चाम के जरे ते जोर,
जाते सब भाँति तहाँ, विनहू रही विनाय ॥

सोरठा

नागराज अति त्रस्त, छद्म भेष धरि कै भज्यो।
विद्युत चालित अस्त्र, सुरभि पर्‌यो भामिनि चरन ॥
सुरति दिवाई ताहि, पूर्व प्रतिज्ञा जो करी।
ताको आजु निबाहि, शरण देइ मोंहि राखिये ॥
मरुत कृतास्त्र प्रहार, भुजग वश के नाश हित।
कहि करि कियो गुहार, 'पाहि माम' बोल्यो विकल ॥
सुधि आई तत्काल, भामिनि को अपनी कही।
कह्यो जाई सब हाल, सविनय पति सों वेगही ॥
भरी अवीक्षित आह, भामिन सों सुनि यों कह्यो।
दड देत नर नाह, कैसे वारण तव करें ॥
भामिनि यों बिलखान शरणागत किम फेरिये।
चलि सोइ करिय विधान, कारज दोऊ जेहि सधे ॥
तीव्र तुरग युत यान, चढ़ि दोऊ पहुँचे तहाँ।
तरुणारुण छविमान, क्रुपित मरुत आनन लखे ॥
देखि मरुत परनाम, नत शिर कै कर चापशर।
रच न किया विराम, भुजग विनाशन मैं निरत ॥
ठहरो ठहरो पुन, नाश बहुत तुम कर चुके।
उचित न कोपं अमुन, मातु पिता हम कह रहे ॥

सरसी छन्द

पूज्य प्रवर! डँसा नागों ने,
मुनि कुमार को व्यर्थ।
किया उपेक्षित मेरा शासन,
क्या था इसका अर्थ॥
दण्डित दुष्टों को करना है,
नित नृप धर्म महान।
नृप इसका अवहेलन करके,
पाता नरक स्थान॥
ब्राह्मण के इन हत्यारों का,
नाश नहीं है पाप।
यों मुझको रोकना आप का,
देता है सन्ताप॥

पूज्यपाद हे! क्षम्य पुत्र यह,
ठहरें थोड़ी देर।
दण्ड यज्ञ की पूर्णाहुति में,
देव, नहीं कुछ बेर॥
कहा पिता ने, प्रतिज्ञात है,
तव जननी से नाग।
पातक महा असत्य विदित है,
तुम को सभी प्रकार॥
जननि प्रतिज्ञा रक्षा ऋनु है,
तुमको धर्माचार।
तत् प्रतिपालन में तुम सा सुत,
बाधक, यह क्या बात॥

भ्रष्ट प्रतिज्ञा जिसकी होती,
वह पामर हो ख्यात।
तत् प्रतिपालन में तुमसा सुत,
बाधक यह क्या बात॥
क्या इतिहास कहेगा इसको,
सभ्य संस्कृत देश।
प्रज प्रशस्त भरत ने पालन,
किया न मातादेश॥
माताज्ञा थी इधर, उधर था,
राजधर्म अति गूढ़।
उसे महत्त्व न दिया भरत ने,
हो कर्तव्य विमूढ़॥
अहो दशगुना है जननी का,
स्वत्व और अधिकार।
विलख विलख माता रोती है,
कहती सुत अनुदार॥
निपट निराश हुई कातर है,
जननि तुम्हारी आज।
आशा कैसे करे कहो तो,
तुम्हीं न रखते लाज॥
मातु पिता का पालक होता,
पुत्र विश्व विख्यात।
कोशल कुल में हुए भरत तुम,
नहीं मानते बात॥
तनय अवज्ञा कारी मेरा,
हा! हा! मर्माघात।

जीवन संभव नहीं हमारा,
होता ऐसा ज्ञात ॥
बोले भरत धर्म-संकट है,
करता बुद्धि मलीन ।
अंधकार विभ्रम है छाया,
निर्धारक अति दीन ॥
प्रिय जननी के वचन पालना,
है प्रिय अति कर्तव्य ।
है कुल धर्म प्रतिज्ञा पालन,
राजधर्म अति भव्य ॥
किसका पालन करूँ समय इस,
मति विभ्रमित महान ।
देही हो सकते तो आवो,
शीघ्र धर्म भगवान ॥
जो कर्त्तव्य बताओ मुझको,
थकित बुद्धि मम तात ।
मार्ग एक देख पड़ता है,
करना प्राणाघात ॥
हा ! निज पर अधिकार न मुझको,
कैसे त्यागूं प्रान ।
बिका प्रजा के हाथ मुकुट ले,
उसके ये तन प्रान ॥
जननि जनक दें क्षमा मुझे मैं,
विप्र प्रजा गो दास ।
संरक्षण उनका कर पाऊँ,
यह है वर उल्लास ॥

धर्म द्वन्द्व हो यदा उपस्थित,
तदा 'स्वधर्मे निधन श्रेय'।
दें आशा यह उचित जान कर,
दुष्ट सर्प हैं जेय ॥
कहा पिता ने राज धर्म मिस,
त्याज्य पिता आदेश।
शरणागत रक्षार्थ त्याज्य है,
हमको तो सर्वेश ॥
सहार प्रवृत्ती से अपनी,
करते नाग विनाश।
तो उनकी रक्षा में देखो,
हम करते निज नाश ॥
तुम शस्त्रश तथा कुछ हम भी,
भक्षण की तव नीति।
रक्षण में है प्रीति हमारी,
नहीं किसी की भीति ॥

सोरठा

नयन अनल सों लाल, अपमानित है पुत्र सों।
गहि बीरन की चाल, बीर अविच्छित धनु लयो ॥
स्मरण कियो कालास्त्र, नील नीलतम शनिविभा।
महाविकट विभ्रास्त्र, धराधराधर कपि उठे ॥
उत संवर्तन अस्त्र, करि दवागि चहुधा दई।
भई सृष्टि सत्रस्त उदित भयो कालास्त्र जब ॥

हा दण्ड करो मत क्या विचार।
मैं तो करता प्रत्युच्चार॥
दुष्टों को देना दण्ड दान।
कर राजधर्म का अनुष्ठान॥

बाधक इतने हो रहे आप।
मेरे विनाश को लिये चाप॥
हे आर्य! कर्म है यह अनार्य।
बाधा न धर्म में कभी कार्य॥

होगा कितना लोकापवाद।
सुन, पितु से सुत-वध का प्रवाद॥
बधते उसको जो धर्मनिष्ठ।
क्यों सिद्ध हो रहा है अनिष्ट॥

तब कहा अवीक्षित ने सधीर।
कुछ यों भी सोचो अरे वीर॥
शरणागत रक्षण परम धर्म।
देता मानस को शान्ति शर्म॥

हो शरणागत रिपु हतोपाय।
तो आर्य उसे देते सहाय॥
देकर स्वमांस शिवि ने सुदान्त।
पारावत रक्षा की सुशान्त॥

रक्षक भक्षक की यहाँ होड़।
क्रोधज ही अब काटता मोड़॥
गुरु पिता बन्धु या आराधक।
हो प्रजा पालने में बाधक॥

तब राजधर्म कहता विधेय।
प्रतिशोध प्रशंसित सदा गेय॥
यों कहा मरुत ने पुनः तात।
मेरा न रुकैगा नाग-घात॥

कुंडलिया

अनहोनी होनी भई, जाको नहिं इतिहास।
जन्य जनक मैं समर भो, काल करै परिहास॥
काल करै परिहास, आस ह्वै रही निरासा।
चकित देव दिगपाल, लखत यह धर्म तमासा॥
धर्महि धर्महि हरै, न देखैं पद्मक योनी।
अद्भुत इसके देव, रचैं अनहोनी होनी॥

कृपाण घनाक्षरी

पुत्र पिता ह्वै रिसान,- मानौ शत्रु के समान,
धर्म नाम पै बिकान, आन बान मैं महान।
हायन पै धर्म प्रान, जान जान मे अजान,
एक एक के परान, लेदवे को हनै बान॥
आसमान ह्व सकान, भासत न भासमान।
घाले खग अप्रमान, होत ज्यों बलि प्रदान।
भूमि भई कम्पमान, जनु भो सुकम्प आन,
टूटि गिरैं तारकान, जनौ प्रलै नीयरान॥

बरवै

शान्त! शान्त! यह आयो शब्द गंभीर।
अप्रमत्त उत देख्यो, दोउन वीर॥

भार्गव मुनि तहँ आये, लै आहराज।
कह्यो समावर्त्तन करि, राखो लाज ॥
बडे धर्म-पालक हो, दोऊ भूप।
कनकाक्षर सा अंकित, कृत्य अनूप ॥
उदाहरण होंगे तुम, धार्मिक-रत्न।
तब अनुसरण करेंगे, नर कर यत्न ॥
बिन विपत्ति तुम जीवौ, युगनि अनेक।
करौ सुशासन सन्तत, सहित विवेक ॥
प्राणित होंगे अब सब, मृत मुनि बाल।
विप्र सींचा है अहिपति, सब तत्काल ॥
मुनि कुमार, जीवित भे, प्रफुलित अंग।
दौरी आई धारा, छायन संग ॥
पुत्र पौत्र को लीनो, तेहि धार अंक।
भये निगुण मिलि इक रस, मनहुँ अशंक ॥

अति बरवै

पहिले की सुध में है, धीरा मति लीन।
रस वात्सल्य तरंगित, उर विरति विहीन ॥
स्वेदित तन हिय हरसित, दोऊ उर लाय।
गंग बिन्दु सम अँसुअन, चरण शिव लाय ॥
स्नेह सलिल सा सिहरे, दोऊ वर भूप।
अनुभव कीनो दोउन, निज बालक रूप ॥
ललकि लगे पुनि दोऊ, गहि हाथ पसारि।
वयस बिसारि तपस्विनि, लीन्ही चुमकारि ॥
मोह मनोहर धारे, जनु सात्विक रूप।
परिणत वय परिणत ह्वै, नव बालानूप ॥

कहन लगे माँ दादी, वे दोऊ भूप।
होड करत पूछन में, वै मकुशल रूप॥
अनुसूया गोदनि जनु, खेलत देवादि।
जनु वात्सल्य रूप धरि, अवतरे अनादि॥
चरण गहे वीरा के, जब भामिनि आय।
सुत सनेह की लीला, तब गई विलाय॥
उठे गोद ते भूपति, दोऊ कर जोरि।
स्वपुर गमन की आशा, चाही सुनि होरि॥

हरिगीतिका

हे जननि! कल सन्ध्या समय है, होलिकोत्सव सर्वथा।
मरे बिना होगी न वह हे, ज्ञात तुमको कुल प्रथा॥
आशीष दे त्योहार हावै, अति उमंगोत्कर्ष से।
पितु मातु पुन आशीष पा, नृप चल दिये अति हर्ष से॥
बीरा विकल कुटि पै गई जनु, तासु धन सब लुटिगो।
योगतप धृति धारणा भाजन, हृदय को जनु फूटिगो॥
कै मोह कण कण शान्ति सागर, तासु यों सब घूटिगो।
प्रभु पद्म पद में अचल मन चल है तहाँ ते छूटिगा॥
मन गगन शन्ति समा दुरित अब, धन घहरतो मोह को।
वात्सल्य सुख रस चहत प्यासो, अब पपीहा छोह को॥
मम नियम अर्क जवास जरिगे, रूप तन मों खोह को।
चित-चख चले अभिराम राम, स्वरूप रवि की टोह को॥

यह मोह जग की स्थिति प्रलय का, हेतु है यह बुध कहैं।
जेहि सेद लुलुमित आपु मैं, है छलित जीवन नर लहै॥
नहिं तजत प्राणी द्वार घर सुख, दुसह दुखहू मैं चहैं।
नर ढैक है, हैं व्यूह जिनसों मोह के जग में ढहैं॥

तेईसवाँ सर्ग समाप्त

चौबीसवाँ सर्ग

कोशल मे होलिकोत्सव

अब्द अन्त मे अखिल, आर्य आनन्द मनावें।
अठिलावें हुलसावें, गावें ढोल बजावें॥
मिलें जुलें सब बाल वृद्ध अरु धूम मचावें।
वैर-भाव को होली में सब जाय जरावें॥
हर्षित हिय सो हिलि, मिलैं अरु अंक लगावें।
नीच ऊँच को भेद, भाव को मुदित मिटावें॥
रग रँगीली होली, भारत की है प्यारी।
परम रसीली नीरस, हू में रस सचारी॥
अलवेलो त्योहार, मास फागुन में आवे।
माघ पचमी शुक्ल, वसतोत्सव कहलावै॥
श्री गणेश होवै है, ता दिन इह उत्सव को।
पूजन पुष्पित आम्र, तले हो सुमनोभव को॥
युवती सखि सँग सजी, धजी गाती इतराती।
माँगि मनोरथ मन्मथ, सों मन मैं मुसकाती॥
हँसी ठिठोली चुभती, करती यौवन माती।
गाल गुलाल लगायँ, इठलायँ रग राती॥
दीन हीन अरु आर्य, मदन देवार्चन त्याजें।
लै रसाल मजरी, मदन रिपु पूजन साजे॥
सजै बसन्ती सारी, नारी उर अनुरागै।
पान खाय नर रसिक, धरैं सिर पीरी पागै॥

यहि दिन सों आरम्भ, होत होरी का उत्सव।
रसिक उपासक याको, गावत फगुआ मिलि सब ॥
'ऐहाँ एहा' करिके गावत लै मजीरन।
डहताल करतार झाँझ की करि झनकीरन ॥
होत बड़ो अन्दोर, धकाधक ढोलक बाजे।
अपढन को आमोद, न अँगरेजिन रुचि राजै ॥
कहूँ होत दुइ तडमैं, भारा गान बजावन।
बाहर नर भीतर नारी गावैं मन भावन ॥
गावत नूतन फागु, रसीले राग होड़ मैं।
कहा कहै, सियरात, रात यहि जोड़ तोड़ मैं ॥
नींद भरी अलसानी, अखिया अति रतनारी।
घूँघट पट ते धाम, दुरे जाती घर नारी ॥
झाँक ताक सब करैं फिर जब गावन बारी।
लख सुरीली रही, कौन रस रस सचारी ॥
सोचै बीत दिवस, कब आवैं पुनि रात।
नया उलारन* मैं जब, ह्वै है कसि करि घातें ॥
एक मास से अधिक होत यह गान बजावन।
चलो जात यह तब लौं, जबलौं होली दाहन ॥

होलिका दाह

छाना छप्पर चोरि, खारि कै ढोय ढोय सब।
डारत होली मैं बालक जो लहैं जहाँ जब ॥
चोरत जौ कहुँ जानि, जात छप्पर को मालिक।
'हारा है' कहि भागत, नटखट होरि हारिक ॥

*चौताल गायन में एक बन्द जोड़कर गान की एक प्रथा है। यह बन्द मूल गीत से पृथक् होता है।

बड़ो ढूह है जाल, काठ कूड़ा-करकट को।
उचटित उपटन आदि, नारि झारन हूँ लटको॥
छिचिपरी खटमल, मसा, मारि भेजें होल्लै महिं।
भारतीय विश्वास, विधी यह नासै रोगहिं॥
पूनो मैं तजि भद्रा, होवै होली दाहन।
पाइय ज्वालामुखी, करिय उपमा अवगाहन।
भजत दूर वासों, याकैं ढिग पूजन आवै।
याकी ऊँची जरनि, वरनि सब जन मन भावै॥
चिनगारिन को झौर, उठत नभ को रंजित कर।
जात छुटाये जनु अनार-चरिया पुंजित कर॥
लखि लखि ताकी बरनि, सफल स्रम सब निज मानै।
बाल युवा की भीर, अबीर मलें नहिं मानै॥
चना, जवा, बरैं, सब मिलि पूजत 'लै होली।
गावत जुरि चौताल, जगावत कहि है 'होली॥
टोली पै टोली गावत, होली तँह आवत।
कोऊ 'चलो जात मिठ बोलवा फागुन' गावत॥
'जोबना ले चलो बचाय फागुन है लागो'।
'मन मोहन अहिर गँवार अँगिया ले भागो'॥
कोऊ कबीर सम कबीर मैं कहै न कहनी।
यहि उत्सव मैं अनाचारिता चहिय न रहनी॥
ललकारत होरी है होरी निज घर आवत।
महारथी फगुआर, द्वार पै धूम मचावत॥
सबै राति अललात, गरो भरि दिन भर गावत।
फाग यज्ञ को सोम, भाँग भोरही चढ़ावत॥
'अँखिया उघरत अरु झँपि जात' तबौ जुरि आवत।
बाँधि गोल लै बाल, गुपालन घर घर गावत॥

* उपले। गोबर की बनी टिकिया जिसके बीच में छेद होता है।

खेलत रंग अबीर, सुधूम* धमार मचावत।
सिखरन, चरबन, गुझिया, चाभत जेइ जो पावत॥
इह प्रकार सब मिलत जुलत अरु होली खेलें।
आइ होलिका पै उड़ाय रज, रचैं कुलेलें॥
रजोत्सवा है नाम, याहि तैं याको जग मैं।
कहत ढूँढेरी धूलि, उडावत जो मगमग मैं॥
भेद-भाव 'निन, हेल-मेल जाके पद पद मैं।
बिनु जाने यह भेद, नई सिच्छा के मय मैं॥
यवनागल सम तरह, देइ परदे मैं बैठत।
मार्ग अगौरव किते, विदेशी विधि गहि ऐंठत॥

प्राचीन होली

सुख समृद्धि सौं पूर्ण, रह्यो जब देश हमारो।
प्रजापाल भूपाल, दुरावत दुख जब सारो॥
रह्यो मरुत सौं भूप, पुनीता गीता जाकी।
तासु राज मैं इह उत्सव की बाँकी झाँकी॥
राज-सदन प्रांगण मैं, रग भरे बहु सागर* ।
टेसू रग के हौज, भरे मनौ लघु सागर॥
बडी बडी लै चहुँधा, पीतल की पिचकारी।
सराबोर कर देत, जाहि पावत प्रतिहारी॥
लाल गुलाल अबीर भीर से भरी चगेरी।
गोवर्धन गिरि सरिस, लगी बुक्के की ढेरी॥
आँगन बिच इत सजो, सुघर कुमकुमागार है।
स्वागत हित चटपटा, मिठाइन को पगार है॥
अपर ओर हैं लगी, सुवस्त्रन की दूकानैं।

* एक प्रकार का होली का गायन।
* पीतल का बड़ा बर्तन॥

सुरभित मघई पान, जिन्है लखि मन नहिं मानै ॥
यों सिंगार के साज, सजे आँगन में आवत ।
प्रजा और की और हुलसि हिय होरी गावत ॥
देखि सजग ह्वै जात, नृपति अरु उनके परिषद् ।
चलत रंग के बान, कुमकुमन गोले अरुवद ॥
प्रजा उतर मैं गेरत, रँग भरि रँग हौजन तें ।
रँग रसराते लसत, दोउ विलसत मौजन तें ॥

रँगे पीत रंग सब जनु, सरसों फूल्यो नख-सिख ।
परिषद् परिवृत उतरि, मनौ आये हरि मिसरिख ॥
कँपत भवै रँग भीजि, लख्यो जब यह कोशलपति ।
वीरा सुत को वीर, अबीर उड़ायो तिन प्रति ॥

बुक्का और अबीर, रंग सूखे भो चीकट* ।
तन पै चमकत तबक, मनौ ओढ़े अतलस-पट† ॥
एक रूप रँग भये, साँवरे गोरे कारे ।
वर्ण भेद नहि रह्यो, मनहुँ सब इक मतवारे ॥

परिरम्भन आरम्भ, नृपति मख्त नै कीनो ।
असन वसन उपहार, देन हित आयसु दीनो ॥
न्हाय धोय नव वसन, धारि सब मगन मगन मन ।
भोजन उत्तम पाय, मुदित नव निधि पाये जन ॥

भग रंग पै पावन, लागे भोजन थमथम ।
बरफी केसर मोदक, खरी कचौरी चमचम ॥
राज गवैया गोल, बाँधि द्वै तड़ मैं गावत ।
समा बंध्यो होरी की, डफ करतार बजावत ॥

---

* आटा, तेल, हलदी का उबटन, जो दूल्हा और दुलहिन को लगाया जाता है।
† सुनहले बाना और रेशम के ताने का महीन वस्त्र ॥

चौताल

गोरी काहे फिरत इतराती, जोबन मद माती।
ये जोबना अतिही मनमोहन मोहत सब सँघाती॥
छतियन कंज फुलायो काहे, घेरे अलि दिन-राती।
मागत देखत, भृंग महा तहँ, बैठो पस पसारी॥
भई मोह मैं आतुर गोरी सुधिबुधि सबै बिसारी।
छमा करौ अपराध हमारो, अक भरहुँ तुहि प्यारी॥

रैला

भयो अन्त होरी को, नट नटुआ उत आये।
नाक बडी काहूकी, लौकी जनु लटकाये॥
चपटी नाक छिपकला, छपरी जनु ऊपर मुख।
कान सूप सम बडे, देत जो महा व्यजन सुख॥
अलकतरो पीपा सम, पेट कोउ दलकावत।
आय ढोलकिया बनि, कोउ कछु उर उचकावत॥
रचि रचि रूप अनूप, दिखेयन की रुचि राजत।
कडक कडक धम धम कै, डुग्गी संग बजावत॥

बिरहा गायन

गोरी गोरी मोरी रे।
होरी होरी। गोरी रे।
सलिया बिनैल्यू, बँधुआ बनैल्यू
पतवा बिनेल्यू रे हाय मोरी गोरी रे,। कडक कडक धम धम
बिनि राखे टैंसुआ, रँगिले फुलौआ,
खावौ न ठेकुआ रे* गोरी हाथ जोरी रे। कड़क कडक धम धम।

* इसको ठोकवा भी कहते है। आटा गुड़ को तेल में सिकी पूरी।

ग्यारह महिनवाँ, तलफि बितौलौं
आय अब फगुआरे, पइयाँ परू तोरी रे ॥ कड़क कड़क धम धम।

✤

तान सुरीली सुनत, प्रजागन तजि नट नट्टुआन।
भका मुकी कै गये, रही नर्तकी जँह बन ठन ॥
नाचति लंक लचाय, हियो ललचाय चायसों।
डफ की होरी गाय, युवति मुसकाय भाय सों ॥

डफ की होरी

खेलैंगे गिरधर सौं होरी।
देंहु सौह वृखभानु लली की, खेल्यौ होरी बरजोरी।
उनकी सौंह तुम्हैं जे तुमरी, मन भावनि ग्वारिनि गोरी ॥
सौंहं तुम्हैं कामिनि कुब्जा की, नन्ही नाइन की छोरी।
तुमको सौंह रानि रुकमिनि का, दौरि दई सिन्दुर रोरी ॥
आजु पहिरि पीताम्बर खेलौ, हम तुम जनु हैं हमजोरी।
मलौं गुलाल लाल इनकर सो, जो हैं पापन की भोरी ॥
पतित पतित-पावन मैं हूँ है, होरी अद्भुत या होरी।
चाह तिहारे संग खेलन की, अरजी मम मरजी तोरी ॥

रोला

तन मन तैं संतुष्ट प्रजा हिय मैं हरखाती।
ललकारत होरी है, होरी है मदमाती ॥
परे राह मैं रुचिर, बाग बनिका बन उपबन।
जहाँ प्रकृति हू खेलति, होरी प्रफुलित तनमन ॥

त्यौं मधूक दुख दूषण रूपी पात गिराये।
होरी मैं जारन कौ, मारुत हाथ पठाये॥
मरुत मीत को मान, आन उर भयो, उमंगित।
मतवारो मन चलो, उतावल मनहु तरंगित॥
मगन मगन मैं मिले, नारि जहँ महुआ बीनत।
यौवन रस हित लपट, झपट अरबस पट छीनत॥
दक्षिण नायक अनिल, चम्पकहि भुज भरि भैंटै।
नवल निवारी कलित कुंज मै रमि श्रम मैटै॥

परिमल सौरभ सुरस, मुदित मकरंदित मारुत।
उपगूहन रत होत, पाय सेवंती इतै उत॥
लखि मारुत व्यभिचरत, आचरत कामुक गुन को।
अरुण नयन कै तरजत, किंशुक मानौ उनको॥

कूकू मिस पिक कहै, अरे थू थूं व्यभिचारी।
अनिल सुनत सन्तप्त, यहत हाहा कै भारी॥
लौटत आवत मिले लाल पिअरे फगुआरे।
रज स्नात करि तिन्हैं, कह्यो लेरे फगुवारे॥

सुनी बतकही भूप, हमारे धरा धन्य है।
वत्सलता उनकी जनता हित अनन्य है॥
दारि दुःख को दरत हरत सन्ताप ताप वै।
पाय प्रतापहु मिलत, हमहि हम सरिस आप वै॥

पालत पितु सम देत गुरु सम उत्तम शिक्षा।
युग युग राजै राज, भूप प्रभु दीजै भिक्षा॥
दुरित रहै सब दुरी, पुरी सन्तति सम्पति हैं।
वै राजा हम प्रजा, रहैं सुर सर दम्पति हैं॥

भरत-वाक्य

सार छन्द
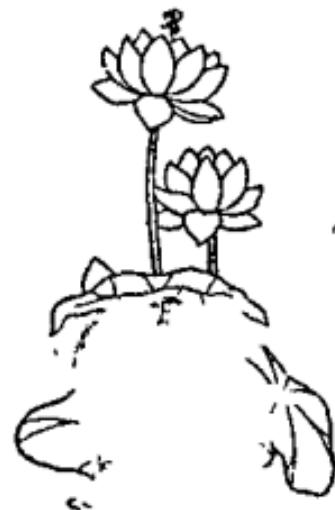
भारत भूप रहे हैं ऐसे,
कथा कथित है जैसी।
सेवक सच्चे रहे प्रजा के,
नृपता निश्छल तैसी॥
सुख समृद्धि तब रही प्रजा मै,
नहि अकाल कभुँ आयो।
स्नेह प्रजा नृप पै नित जैसो,
पुत्र पिता मै पायो॥
नयो कलेवर भारत धारत,
नव शासन नव धारा।
प्रजा चुनैगी ताहि सचिव,
निज होइहै जे तिहि प्यारा॥
प्रजातन्त्र जग मैं बाजै जो,
यह नहि सुख को प्रत्यय।
मंत्रि वर्ग जब निज सुख दुख तजि,
स्वार्थ त्याग में हो लय॥
स्वार्थ-हीन है प्रजा लीन है,
प्रान प्रजा पै वारैं।
सत्यप्रतिष्ठ, सत्य कै बाना,
सत्य धर्म को धारैं॥
है है भारत अद्वितीय तब,
जगहि नीति यह दैहै।

सुख समृद्धि सेविका सिद्धि लै,
जग नायक वह है है ॥
विरह वेदना की कविता तव,
तिनि लागैगी फीकी।
रसिक राज प्रिय सुरस राजकी,
वृत्ति लगैगी नीकी ॥
भारत भव्य भविष्य सुखी,
सुपठित भारत के वासी।
तिनके मनोविनोद हेतु यह,
कथा कही अविनाशी ॥

निधि नभ नभ चख विक्रमी, पूनो कातिक मास।
शनि वासर मैं कवि कियो किसलय काव्य विकास ॥

चौबीसवाँ सर्ग समाप्त

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
६	सकरी	सफरी
२७	गिरि	गर
५४	बुद्धिहीन	बुद्धिहानि
५८	तव	तव
७७	अनुप	अनूप
७८	पारो	परो
६१	निन्दिल	निन्दित
६७	वदल	वदलि
१२८	मानु	मातु
१३१	अपन्य	अपत्य
३३२	तति	तात
१३८	समय	सभय
१४४	तरुनित	तरुजित
१४८	न	ने
१४८	मैं	में
१५०	कुहूँ कुहूँ	कुहू कुहू
१५०	प्रेमी	प्रेम
१५१	स	रस
१५८	मोहनि	मोहनी
१७१	सिहाते	सिहात
१७७	म	प्रेम
१७८	धीखनी	धीवरनी
१८४	शची	शचि
२०९	से	में
२१६	दुलहित	दुलहिन

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२२२	भश्मे	भस्मे
२२२	वितिये	वितये
२४७	कलावेत	कलावँत
२४८	परे	परैं
२७१	कछ	कुछ
२७५	वनयो	विनयो
२७७	पेंडोलन	पॅडोलन
२९३	का	की